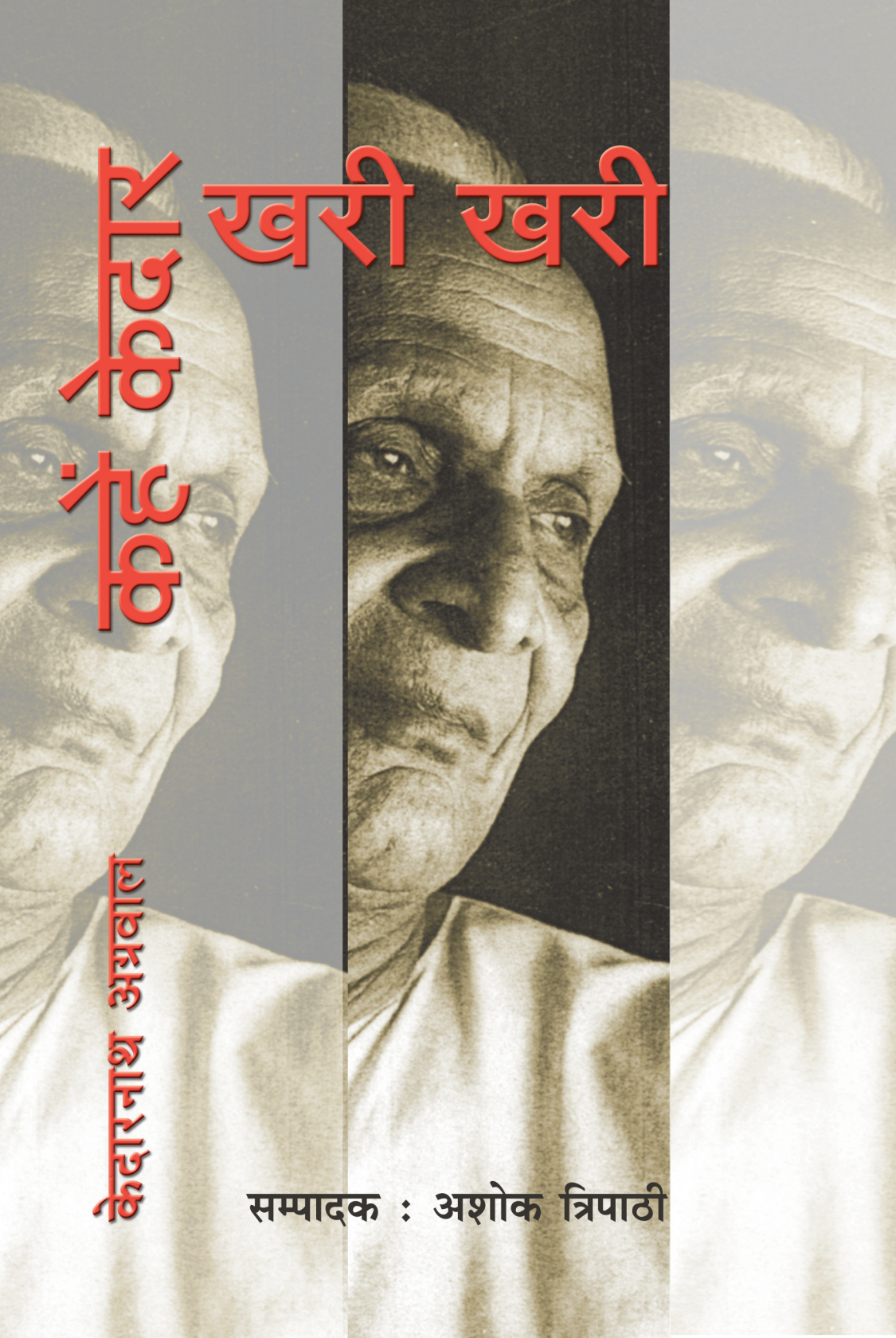

केदार खरी खरी

केदारनाथ अग्रवाल

सम्पादक : अशोक त्रिपाठी

कहें केदार खरी-खरी

(केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ)

सम्पादक

डॉ० अशोक त्रिपाठी

साहित्य भंडार

इलाहाबाद 211 003

I S B N : 978-81-7779-181-8

❁

प्रकाशक

साहित्य भंडार

50, चाहचन्द, इलाहाबाद-3

दूरभाष : 2400787, 2402072

❁

लेखक

केदारनाथ अग्रवाल

❁

स्वत्वाधिकारिणी

ज्योति अग्रवाल

❁

संस्करण

साहित्य भंडार का

प्रथम संस्करण : 2009

❁

आवरण एवं पृष्ठ संयोजन

आर० एस० अग्रवाल

❁

अक्षर-संयोजन

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

56/13, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद-2

❁

मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

148, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद-3

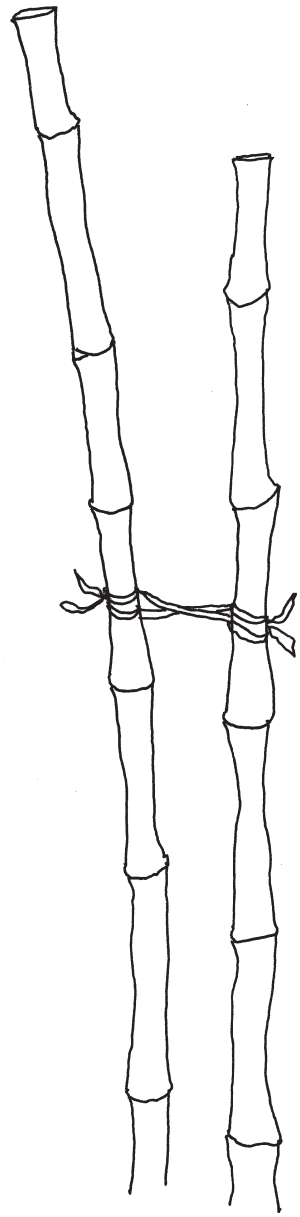

मूल्य : 200.00 रुपये मात्र

कहें केदार खरी-खरी

प्रकाशकीय

इस संकलन का प्रकाशन 'साहित्य भंडार' के प्रथम संस्करण के रूप में सम्पन्न हो रहा है। केदारजी के उपन्यास 'पतिया' को छोड़कर, उनके शेष समस्त लेखन को प्रकाशित करने का गौरव भी 'साहित्य भंडार' को प्राप्त है। केदारनाथ अग्रवाल रचनावली (सं० डॉ० अशोक त्रिपाठी) का प्रकाशन भी 'साहित्य भंडार' कर रहा है।

एक तरह से केदार-साहित्य का प्रकाशक होने का जो गौरव 'साहित्य-भंडार' को मिल रहा है उसका श्रेय केदार-साहित्य के संकलन-संपादक डॉ० अशोक त्रिपाठी को जाता है उसके लिए 'साहित्य-भंडार' उनका आभारी है। यह गौरव हमें कभी नहीं मिलता यदि केदार जी के सुपुत्र श्री अशोक कुमार अग्रवाल और पुत्रवधू श्रीमती ज्योति अग्रवाल ने सम्पूर्ण केदार-साहित्य के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार हमें नहीं दिया होता। हम उनके कृतज्ञ हैं।

भाई आर. एस. अग्रवाल ने इस संकलन को कलात्मक सज्जा प्रदान किया इसके लिए उनका आभार।

सतीशचन्द्र अग्रवाल
विभोर अग्रवाल
2009

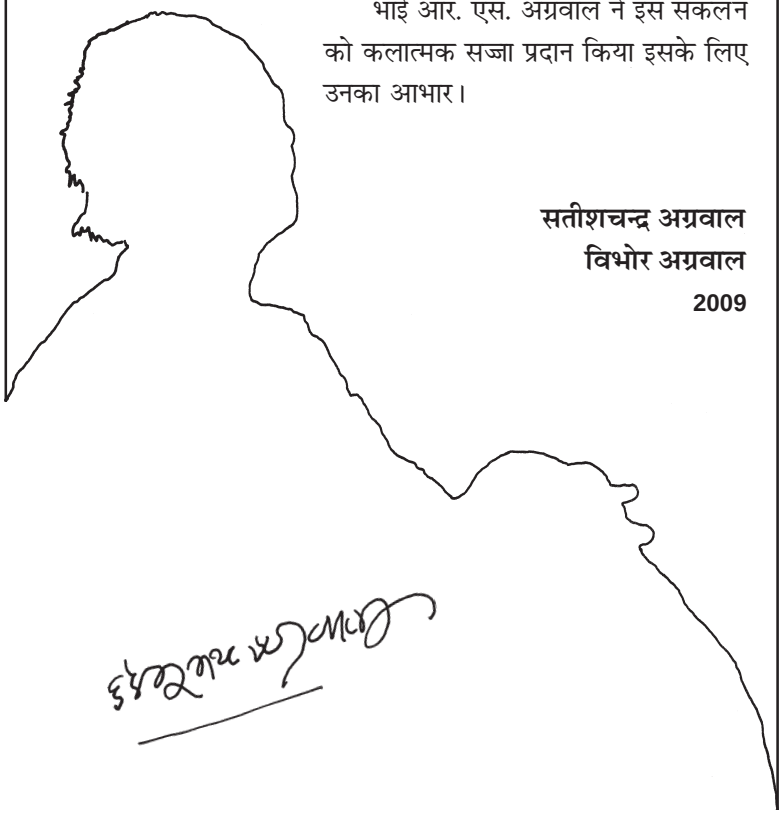

कैफियत

बाँदा। मानिकपुर—झाँसी पैसेन्जर रेलगाड़ी।

10 सितम्बर 1981।

गन्तव्य था—भोपाल।

उद्देश्य था—मध्य प्रदेश प्रगतिशील लेखक-संघ की भोपाल इकाई द्वारा 11, 12, 13 सितम्बर 1981 को भोपाल में आयोजित 'महत्व : केदारनाथ अग्रवाल' कार्यक्रम में भाग लेना, क्योंकि मुझे भी आमंत्रित किया गया था।

इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए, इलाहाबाद से श्री शिवकुमार सहाय और मैंने, भोपाल जाने के लिए बाँदा होकर जाना तय किया, ताकि केदारजी को भी साथ लेकर जा सकें। इस आशय का पत्र भी केदारजी को लिख दिया गया कि हम लोग 9 सितम्बर को चलकर 10 की प्रातः बाँदा पहुँचेंगे, जहाँ से 12 बजे जाने वाली मानिकपुर—झाँसी पैसेन्जर से, प्रस्थान करेंगे।

परन्तु, 9 सितम्बर की शाम को ऐसा लगा कि हम लोग बाँदा होकर भोपाल न जा सकेंगे, क्योंकि हम लोगों का संकल्प था कि इस अवसर पर केदारजी का दुष्प्राप्य आल्हा, 'बम्बई का रक्त स्नान' अवश्य ही भाग लेने वालों को भेंट किया जा सके, और यहाँ हालत यह थी कि शाम तक यह छपकर तैयार भी नहीं हो सका था, बाइन्ड होने की बात कौन कहे।

इस दिन इलाहाबाद का मौसम बड़ा ही खराब था। सबेरे से ही जो पानी बरसना शुरू हुआ कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। बिजली गायब थी। सारा मैटर कम्पोज होकर रखा था, पर छपे कैसे? समस्या विकट थी। पानी में भीगते हुए मैंने और सहाय साहब ने सारे प्रेस छान मारे, पर कोई न कोई रोना सबका रहा। कोई भी छापने की स्थिति में नहीं था। बड़ी मुश्किल से शाम को एक प्रेस तैयार हुआ। अब तक बाँदा जाने वाली गाड़ी छूट चुकी थी।

आल्हा रात में छपकर तैयार हुआ। अब समस्या थी कि बाइन्ड कैसे हो? समय बिल्कुल नहीं था। दूसरे दिन इलाहाबाद में रुकना संभव नहीं था। बाँदा

में केदारजी इन्तजार कर रहे थे। अब तक बाँदा के लिए रात 8.00 बजे जाने वाली अन्तिम बस भी छूट चुकी थी। लेकिन जाना तो था ही, लिहाजा छपा फार्म बाँधा, कवर लिया कि इसे भोपाल में ही बाइन्ड करायेंगे, और स्टेशन पहुँचे। एक गाड़ी मानिकपुर होते हुए जाने को तैयार खड़ी थी। चढ़ गए। सबेरे मानिकपुर पहुँचे। वहाँ से बस पकड़ी और बाँदा पहुँचे। इस समय तक 11 बजे चुके थे। केदारजी के घर गया। देखा वह तैयार थे। क्योंकि केदारजी समय से आधा घंटा पूर्व स्टेशन पहुँचने के अपने पुराने सिद्धान्त पर आज भी अमल करते हैं वैसे ही, जैसे कि गाड़ियाँ कभी भी समय पर न पहुँचने की अपनी कसम पर अमल कर रही हैं।

केदारजी के साथ हम लोग स्टेशन आए—बाँदा, रेलवे स्टेशन। गाड़ी—जैसा कि उसे होना चाहिए था—लेट थी। और इसी लेट का सुपरिणाम था कि भाई एहसान आवारा, गोपाल गोयल और जयकांत शर्मा को भी गाड़ी मिल गयी। ये लोग भी 'महत्व' कार्यक्रम का महत्व बढ़ाने भोपाल चल रहे थे।

आखिरकार गाड़ी आयी। हम सब उसमें बैठे। 'आया है सो जायगा' को तर्ज पर गाड़ी चूँकि आयी थी, इसलिए चली भी। और जब गाड़ी चली, तो साहित्य-चर्चा भी चली। क्योंकि यहाँ साहित्य-चर्चा का पूरा संरजाम मौजूद था। खास करके जब प्रकाशक होता है, तो साहित्य के प्रकाशन की योजनाओं पर विशेष चर्चा होती है। यहाँ भी वही हुआ, होना भी था।

हुआ यों कि यह प्रस्ताव आया कि केदारजी के समूचे साहित्य को प्रकाश में आना चाहिए, जो कि अभी नहीं हुआ है। उनकी तमाम रचनाएँ ऐसी हैं, जो अभी उनके अब तक के प्रकाशित संकलनों में स्थान नहीं पा सकी हैं। यहाँ तक कि कुछ बहुत ही प्रसिद्ध रचनाएँ, जैसे—''घर में एक हथौड़े वाला और हुआ'' आदि भी अभी तक किसी संकलन में नहीं है।

हम सबने मिलकर केदारजी से निवेदन किया कि आप अभी तक की अप्रकाशित रचनाओं तथा असंकलित रचनाओं की एक पांडुलिपि तैयार करके दे दें, तो यह महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाय।

लेकिन जैसा कि हमेशा से उनकी आदत रही है, प्रचार-प्रसार से दूर साहित्य-सर्जना करते रहना ही उनका उद्देश्य रहा है, आज तक कभी खुद उन्होंने कोई पांडुलिपि तैयार करके नहीं दीं, उसी के अनुरूप उन्होंने कहा ''या ऽऽ र! अब ई सब तो मुझसे न हो पायगा। इतनी मेहनत करना मेरे बूते की बात नहीं है। और फिर उसको छापकर तुम लोग करोगे भी क्या?''

मैं समझ गया कि यह टाल रहे हैं। गाड़ी अपनी स्वाभाविक गति से रुकती-रुकाती चली जा रही थी।

''आप कुछ न करें। आप सिर्फ यह काम करने का आदेश भर दे दें, और फाइल आदि दे दें, जिनमें ये कविताएँ आदि लिखी हों।'' मैंने प्रस्ताव रखा।

केदारजी अभी कुछ बोल ही नहीं पाए थे कि सब लोगों ने मेरा समर्थन किया। इसके बाद फिर केदारजी बहाना नहीं बना सके। उन्होंने फाइल आदि देने का वचन दे दिया। तय हो गया कि मैं अक्टूबर में इलाहाबाद से बाँदा आऊँ और यहाँ रुककर यह काम कर डालूँ।

हम लोग भोपाल पहुँचे। 13 सितम्बर को कार्यक्रम का समापन हुआ। सब लोग वापस आ गए। इसके बाद मैं लगातार इस फिराक में रहा कि मैं बाँदा हो आऊँ, परन्तु दिसम्बर के पहले मैं बाँदा न जा सका। मैं दिसम्बर में बाँदा गया और अपने मित्र अश्विनीकुमार उपाध्याय (उस समय वह डिग्री कालेज में भौतिक शास्त्र के प्रवक्ता थे, अब भारतीय वन सेवा में आई० एफ० एस० के प्रशिक्षणार्थी के रूप में देहरादून में हैं) के यहाँ डेरा डाल दिया।

दिसम्बर का समय, मेरे लिए, मेरे जीवन का सबसे अमूल्य और एक नये जगत से सीधे साक्षात्कार का महत्वपूर्ण समय था। यह नया जगत था—रचना का जगत। रचना का यह जगत बड़ा ही जीवंत और रोमांचकारी था। रोमांचकारी इसलिए कि यहाँ शब्दों की उठा-पटक साफ-साफ दिख रही थी। इनकी आपसी लड़ाई के रोमांचक दौर से मैं गुजर रहा था। जीवंत इसलिए कि इन शब्दों में हमारा जीवन स्पंदित था। वे शब्द हमारे ही संघर्षमय जीवन के प्रतिरूप थे।

डायरियों, कापियों और फाइलों से गुजरते हुए मैंने महसूस किया कि केदारजी का कवि कविता के प्रति पूरी तरह समर्पित रहा है। मुक्तिबोध की ही तरह केदारजी ने भी एक-एक शब्द तथा एक-एक पंक्ति को कई बार जाँचा-परखा है, तौला है, रचना-कर्म के दौरान कई-कई बार बदला है, काँटा-छाँटा है तब कहीं जाकर तराशे रूप में प्रस्तुत किया। ऐसी समर्पित निष्ठा, बहुत कम कवियों में देखने को मिलती है।

इन कविताओं का रचना-काल सन् 1930-32 से लेकर आज तक फैला हुआ है। इनको रचने के लिए कवि ने दिन और रात का भेद कभी स्वीकार नहीं किया। लगता है कि कवि के मन में रचना की सुगबुगाहट जब होती थी, तो कवि बेचैन हो जाता था। कविता, कवि को सोने नहीं देती थी। यहाँ तक कि वह प्रिया के प्रगाढ़ आलिंगन को भी चुनौती देने में संकोच नहीं करती

थी। सुबह हो, दोपहर हो, शाम हो, या रात के 12, 1, 2, 3, बजे हों, या भोरही के 4-5 बजे हों, कविता-प्रिया ने कभी इसकी परवाह नहीं की। वह कवि को बेचैन कर ही देती थी कि वह उसे अपने हृदय-अंक में समेट ले। कवि भी अपनी कविता-प्रिया को, शिकायत या मान का मौका दिये बगैर बड़े प्यार से भींच लेता था और अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर देता था।

ये कविताएँ नीलम मेडिकल स्टोर की दवाओं की स्लिप से लेकर कचेहरी के फुलस्केप वाटर मार्क पेपर तक में लिखी मिली हैं। कविताएँ साफ-साफ मोती जड़े शब्दों और पंक्तियों की तरह भी मिली है और रेत में अन्तर्भुक्त सोने की तरह भी।

इस पद्धति से करीब डेढ़ हजार कविताएँ ऐसी मिलीं जो कि अभी तक उनके अब तक प्रकाशित संकलनों में नहीं आ पायी थीं। इनमें से कुछ कविताएँ तो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं, पर अधिकांश प्रकाशन से उदासीन, अपने में आत्मलीन थीं, बिल्कुल अपने कवि की ही तरह।

कविताएँ छँट जाने के बाद, यह समस्या सामने आयी कि अब इन कविताओं को क्रम कैसे दिया जाय—विषय-वस्तु के आधार पर, शैली के आधार पर या काल-क्रम के आधार पर? मुझे काल-क्रम के आधार पर इन कविताओं को तरतीब देना सुविधाजनक भी लगा और उपयोगी भी।

उपयोगी इसलिए, क्योंकि केदार की कविता का कालक्रमानुसार विकास हिन्दी-प्रगतिशील कविता का विकास है। केदारजी प्रगतिशील कविता के प्रसव, शैशव, तरुणाई, यौवन और उसके आज तक के विकास के अनेक मोड़ों के मील के पत्थर हैं। प्रगतिशील कविता का इतिहास, केदारनाथ अग्रवाल की कविता का इतिहास है। शैली, तेवर और विषय के वैविध्य, सभी दृष्टि से दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं, कुछ-कुछ उसी तरह जैसे कबीर, जायसी, सूर और तुलसी भक्ति-साहित्य के पर्याय हैं।

केदारजी की कविताओं में कविता के सभी अवयवों में विकास की एक ऊर्ध्वमुखी धारा विद्यमान है। इसलिए काल-क्रम के आधार पर उनकी कविताओं का अध्ययन करना, केदारजी की कविता के साथ-ही-साथ प्रगतिशील कविता की विकासमान धारा का भी अध्ययन होगा, जो तत्कालीन, तात्कालिक संदर्भों की रोशनी में उस युग का एक संवेदनशील इतिहास भी हैं। इस प्रकार कविताओं के द्वारा ऐतिहासिक विकास क्रम की और ऐतिहासिक विकास-क्रम के द्वारा कविताओं की जाँच-पड़ताल में मदद मिलेगी।

इसी कारण कविताओं के संयोजन का क्रम, रचना-काल को आधार बनाकर काल-क्रम में करने का संकल्प लिया गया।

रही बात प्रस्तुत संकलन 'कहें केदार खरी-खरी' की कविताओं के क्रम-निर्धारण और इनके संकलन-दृष्टि की, तो इनके पीछे भी यही दृष्टि रही है, परन्तु इसके साथ ही इनके संकलन में विषय को भी आधार बनाया गया है। और इसका भी कारण है।

भोपाल में सम्पन्न ''महत्व : केदारनाथ अग्रवाल' कार्यक्रम में अग्रज डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी ने केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं पर बोलते हुए कहा था ''केदार की कविताओं में व्यंग्य नहीं मिलता।'' मुझे इनकी यह बात पिंच कर गयी। इत्तफाफ से विश्वनाथजी के बाद मुझे आमंत्रित किया गया। मैंने इस भ्रम का खण्डन किया। मुझे ऐसा लगा जैसे अग्रज विश्वनाथजी ने केदारजी की समूची कविताओं को पढ़ा ही नहीं है क्योंकि यदि उन्होंने पढ़ा होता तो वह ऐसा न करते जबकि आज से काफी साल पहले, डॉ० नामवर सिंह ने अपने 'प्रगतिवाद' नामक लेख में स्वीकार किया है कि 'व्यंग्य दो ही कवियों ने लिखे हैं, या तो नागार्जुन ने या फिर केदार ने।'

इन कविताओं पर काम करते हुए यह बात भी मेरे मनस सागर को झकझोर रही थी। इसीलिए केदारजी की कविताओं के मूल्यवान जखीरे में से मैंने ऐसी कविताओं का अलग चुनाव किया, जिनमें व्यंग्य का तेवर हो और कुछ राजनीतिक संस्पर्श हो। शैली और विषय के इन दो संश्लिष्ट आधारों को मूल में रखकर, इन कविताओं का संकलन किया गया तथा रचना-काल के क्रम में उन्हें संयोजित किया गया; ताकि अब कोई भी स्वनामधन्य आलोचक यह न कह सके कि केदार की कविताओं में व्यंग्य नहीं है।

केदारजी धरती के कवि हैं। खेत, खलिहान, कारखाने और कचेहरी के कवि हैं, इन सबकी पीड़ा, दु:ख-दर्द, संघर्ष और हर्ष के कवि हैं। वह पीड़ित और शोषित मनुष्य के पक्षधर हैं। वह मनुष्यता के कवि हैं। कविता में मनुष्य तथा मनुष्यता के तलाश के कवि हैं। वह मनुष्य बनना चाहते हैं—देवत्व उनकी कामना नहीं है क्योंकि ''परम स्वारथी देव सब।'' मनुष्य बनना और मनुष्य बनाना ही उनके जीवन की तथा कवि-कर्म की सबसे बड़ी साध है तथा साधना भी।

इस संकलन की कविताएँ अपने समय की दस्तावेज भी हैं। इन कविताओं में सन् 1946 से लेकर सन् 1977 तक का युग बोलता है; और इसीलिए इन कविताओं में आज का युग भी केवल बोलता ही नहीं वरन्

कहीं-कहीं तो चीखता भी नजर आता है, क्योंकि ये रचनाएँ अपने युग से गहरी संपृक्ति रखती हैं।

ये कविताएँ उस समय भी सार्थक थीं और आज भी सार्थक हैं, इसीलिए शाश्वतता हैं। क्योंकि किसी भी रचना में शाश्वत का गुण तभी आता है जब वह समकालीनता को आत्मसात करती हुई चलती है। रचना की श्रेष्ठता का मानदण्ड है—रचना का अपने युग से संपृक्त होना, अपने समय की कोख से पैदा होना, उस समय के मनुष्य के दु:ख-दर्द, हर्ष विषाद, उत्साह-उछाह की मूकता को वाणी देना।

जो रचना हमें कष्ट के क्षणों में, निराशा और हताशा के क्षणों में सम्बल प्रदान करे, जिसकी पंक्तियाँ हमारे ओठ गुनगुना उठें, वही रचना श्रेष्ठ है, मूल्यवान है और ऐसी रनचा वही होती है जिसका केन्द्र मनुष्य होता है। मनुष्य—जो हल चलाता है, घन चलाता है, रिक्शा खींचता है, इक्का हाँकता है, मशीन चलाता है, ट्रक, बस, ट्रेन चलाता है, ठेला खींचता है, मजूरी करता है आफिस में कलम घिसता है, श्यामपट पर चाक घिसता है, सीमा पर अपना खून बहाता है, दूसरों की भलाई के लिए कुर्बानी देता है, दूसरों की कमाई पर ऐश नहीं करता। श्रेष्ठ रचना वही होती है, जो शोषण की कलई खोलती है, शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है, हमें अपनी पहचान कराती है।

इस संकलन की कविताएँ यह सब करती हैं, इसीलिए ये श्रेष्ठ हैं, प्रासंगिक हैं, आज भी अपनी सार्थकता रहती है, अपना संदर्भ सिद्ध करती हैं। ये कविताएँ आगे भी तब तक ये सब करती रहेंगी, जब तक यह व्यवस्था सन् '46 की व्यवस्था (जो कि आज भी वही है) बरकरार रहेगी। क्योंकि ये कविताएँ व्यवस्था की अनिवार्य संवेदनात्मक प्रस्तुति हैं।

जिस शोषणवादी व्यवस्था के तहत मनुष्य सन्'46 में बेहयायी के साथ जी रहा था, उसी व्यवस्था में आज: भी जीवन को उसी बेहयायी के साथ जी रहा है। इसलिए जब तक यह व्यवस्था शाश्वत रहेगी, ये कविताएँ भी शाश्वत रहेंगी।

इस संकलन की रचनाएँ अपने कथ्य, शिल्प और अपनी भाषा में केदारजी की अब तक संकलित कविताओं से कुछ अलग तेवर लिए हुए हैं। ये कविताएँ देश के मेहनत मजूरी करन वाले लोगों की आत्मा की पुकार हैं, उनकी झुंझलाहट हैं, उनकी तिलमिलाहट हैं, उनकी खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की संकल्पशक्ति हैं, उनकी एका के बल का तूर्यनाद हैं, स्वार्थी,

शोषक, सत्तालोलुपों को उनकी फटकार और ललकार हैं, उनकी पीर हैं, देश की दरकी हुई छाती की उनके हृदय में खिंची तस्वीर हैं, राजनीतिक हथकंडेबाजी के षड्यंत्रों की नकाब को चीरकर बेनकाब करने वाली शमशीर हैं, व्यंग्य की चाशनी से पूरित तीर हैं जो उन्हीं की भाषा में उन्हीं के ताल लय और तरन्नुम में हृदय रूपी चट्टान से फूटे-निर्मल और प्रवाहपूर्ण झरने की मर्मर संगीत हैं—संघर्षमय जीवन का आकुल संगीत हैं जो देश और काल की सीमा से परे देशातीत और कालातीत हैं।

मुझे पूरा यकीन है कि इन कविताओं के प्रकाशन से केदारजी, आलोचकों और इतिहासकारों के लिए मुश्किल पैदा कर देंगे। क्योंकि अभी तक केदारजी के लिए उन्होंने जो चौखटा तैयार किया था, वह ओछा और छोटा हो जायेगा। उन्हें नये सिरे से सोचने के लिए मजदूर होना पड़ेगा। लेकिन इन रचनाओं के प्रकाशन के बाद जो अध्ययन या सोच-विचार पैदा होगा, वह केदारनाथ अग्रवाल की एक ऐसी आदमकद तस्वीर पेश करेगा, जिसके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग, जीवन के हर तरह के रंग और रेशे से पूरित होंगे, और फिर जिसमें किसी भी प्रकार के काँट-छाँट की गुंजाइश नहीं होगी।

प्रस्तुत संकलन 'कहें केदार खरी-खरी' इसी उद्देश्य की पूर्ति का पहला प्रयास है। इसके बाद शीघ्र ही उनकी अब तक की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रचनाओं—गद्य और कविता दोनों को काल-क्रम में संयोजित करके सहृदय पाठकों के सामने, प्रस्तुत करने की वृहद् योजना है।

इसके अतिरिक्त केदारजी अपने समकालीन कवियों, मित्रों, पाठकों, आलोचकों, सम्पादकों की नजरों में क्या रहे हैं, इसका जायजा भी सुधी पाठकों के सामने रखने की योजना है, और इस काम के लिए उनके पास आए पत्रों को माध्यम के रूप में चुना गया है। ये पत्र जहाँ एक ओर केदारजी की छवि को आँकने में मदद देंगे, पत्र लेखकों की मानसिकता को उजागर करेंगे; वहीं दूसरी ओर साहित्य-जगत की कई अनबूझ पहेलियों और कई साहित्यकारों की नकली खोल को भी उतार कर उनका असली रूप प्रस्तुत कर सकने में कामयाब होंगे।

लेकिन ये सारी-की-सारी महत्वाकांक्षी योजनाएँ हमारे देश की पंचवर्षीय योजनाओं की ही महत्वाकांक्षाएँ सिद्ध होतीं अगर परिमल प्रकाशन के संचालक अग्रज शिवकुमार सहाय का सहोग न मिलता। मेरी स्थिति तो मात्र मध्यस्थ की है। मैं तो केदारजी के यहाँ से सामग्री लेकर, तरतीब देकर सहाय साहब को केवल दे भर रहा हूँ। बाकी सारी जहमत तो वह खुद उठा रहे हैं।

ऐसी स्थिति में मैं उन्हें धन्यवाद दूँ या नहीं, कुछ सोच नहीं पा रहा हूँ। फिर भी अनिर्णय की ही स्थिति में सही, मैं उन्हें अपनी ओर से कम केदारजी की ओर से अधिक, धन्यवाद दे ही देता हूँ। केदारजी की ओर से अधिक इसलिए क्योंकि भूमिका के स्थान पर जो 'कैफियत' मुझे देनी पड़ी उसका आदेश केदार जी ने ही मुझे दिया है। यदि यह काम वह खुद करते तो सहाय साहब को धन्यवाद अवश्य देते, उनके आभारी होते, जैसा कि अब तक वह होते रहे हैं।

केदारजी की कुछ धन्यवाद वगैरह दूँ कि न दूँ यह और भी मुश्किल निर्णय है। क्योंकि यह कृति तो उन्हीं की है। उन्हीं की कृति के लिए उनको धन्यवाद दूँ भी, तो भला किस हैसियत से? ऐसा करना तो उसी झींगुर के समान होगा, जो कि अनाज के ढेर पर बैठकर सोचता है कि वह अनाज मेरा ही है। लेकिन बिना कुछ दिये मन भी तो नहीं मान रहा है, क्योंकि बिना किसी हिचकिचाहट के, मुझ पर विश्वास करके, उन्होंने अपनी जो अमूल्य निधि कविताओं की डायरियाँ, कापियाँ, चिटें, फाइलें तथा पत्र आदि मुझे दिया, उनके चुनाव का तथा उनके संयोजन का अधिकार मुझे दिया, वह मेरे लिए परम गौरव की वस्तु है। यह मेरे लिये वैसा ही है जैसे किसी भिखारी को राजा अपने कोष का अधिकारी बना दे। इसके साथ ही स्वयं भूमिका न लिखकर मुझे इसका भी अधिकार दिया, यह भी मेरे लिए उनके मन में स्नेह का प्रतीक है। मैं अपने को गौरवान्वित और सम्मानित महसूस करता हूँ और कुछ देने के नाम पर अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा व्यक्त करता हूँ और बदले में पुनः आशीर्वाद की कामना करता हूँ।

लेकिन एक व्यक्ति के प्रति निस्संकोच मैं आभार व्यक्त करूँगा और वह है मेरे मित्र अश्विनीकुमार उपाध्याय जिनके यहाँ मैंने इन कविताओं के संकलन के दौरान महीने भर रोटियाँ तोड़ी हैं। ऐसे समय गीता भाभी ने जिस स्नेह के साथ तर माल खिलाया और मेरे कारण असुविधाएँ सहीं, उसके प्रति मैं चिर कृतज्ञ रहूँगा। ऐसे समय रुचिका की याद न करना बेईमानी होगी, इसलिए उसे स्नेहिल आशीर्वाद देता हूँ। क्योंकि थकान के क्षणों में उसकी किलकारी मुझे उत्फुल्लता प्रदान करती रही है।

प्राचार्य —**अशोक त्रिपाठी**
कौशाम्बी डिग्री कालेज मऊ
बाँदा
26 जनवरी, 1983 ई०

अनुक्रम

कविता का शीर्षक या पहली पंक्ति	रचना-तिथि	पृष्ठांक
राजनीति	7 फरवरी, 1946	17
घोड़े का दाना	12 अप्रैल, 1946	18
एका का बल	5 अगस्त, 1946	21
कारण-करण	10 अगस्त, 1946	23
एक भूल	11 अगस्त, 1946	24
पुतलीघर	21 अगस्त, 1946	27
हमारी जिन्दगी	8 सितम्बर, 1946	30
अलीगढ़ की आग	12 सितम्बर, 1946	33
भारत माँ का गीत	13 सितम्बर, 1946	34
हाय न आई	15 सितम्बर, 1946	36
राधा की आशा	16 सितम्बर, 1946	37
बैलगाड़ी	19 सितम्बर, 1946	39
न मारौ नजरिया	28 सितम्बर, 1946	40
क्या लाये!	29 दिसम्बर, 1946	41
आज	10 जून, 1947	42
सुनो खबरिया	12 जून, 1947	42
मिल मालिक	15 जून, 1947	43
शपथ	10 अक्टूबर, 1947	46
अंग्रेजी पियानो	1 अगस्त, 1948	48
यदि आयेगा डालर!	9 अगस्त, 1948	50
नेता	1 नवम्बर, 1948	52

नेताशाही से	3 नवम्बर, 1948	53
जन-क्रांति	4 दिसम्बर, 1948	54
मंत्री-मास्टर-संवाद	15 जनवरी, 1949	55
फगुआ का व्यंग्य	16/22 जनवरी,1949	58
थैलीशाहों की...	8 सितम्बर, 1949	62
राजनीति का गर्भपात	14 मई, 1950	63
जिन्दगी	15 अगस्त, 1950	65
वोट न माँगै पैहौ	2 सितम्बर, 1951	70
हम तौ उनका वोट न देबै	10 सितम्बर, 1951	73
देख देख रामराज पीर नहीं तजती	15 सितम्बर, 1951	79
आग लगे इस राम-राज में	18 सितम्बर, 1951	81
वायस ऑव अमरीका को सुनकर	30 सितम्बर, 1951	82
अमरीका से	10 अक्टूबर, 1951	86
मैं	11 अक्टूबर, 1951	87
काका-काकी संवाद	31 अक्टूबर, 1951	89
चुनाव मोरचे की अन्त्याक्षरी	8 नवम्बर, 1951	91
जन-गीत	14 जनवरी, 1952	95
वह	26 नवम्बर, 1952	97
साथी	27 नवम्बर, 1952	98
जब-तब	27 नवम्बर, 1952	99
प्रश्न	12 फरवरी, 1953	100
नौजवान से	8 नवम्बर, 1953	101
सुनो—	9 नवम्बर, 1953	103
पाकिस्तान से	20 जनवरी, 1954	104
सवाल-जबाब	5 फरवरी, 1954	108
वास्तव में	26 अप्रैल, 1954	110
मुक्त चीन में निर्माणों से शासन होता	12 सितम्बर, 1954	111
मजदूर का जन्म	3 अक्टूबर, 1954	113

हमारे अफसर आदमखोर	13 अक्टूबर, 1954	114
रोते महँगू गफलू शेख	11 सितम्बर, 1955	115
भैरव का भैंसा	22 सितम्बर, 1955	119
धिक्कार है!	22 सितम्बर, 1955	121
और खेल लो और नाच लो	1 अक्टूबर, 1955	123
यह देखो कुदरत का खेल	7 अक्टूबर, 1955	125
बात करो केदार खरी	18 अक्टूबर, 1955	127
जनता का बल	22 अक्टूबर, 1955	128
आज मरा फिर एक आदमी	23 अक्टूबर, 1955	129
कल और आज	23 अक्टूबर, 1955	131
गाओ साथी!	29 जनवरी, 1956	133
कागज की नावें	5 अक्टूबर, 1957	135
राजमंच पर	5 नवम्बर, 1958	136
तुम!	16 नवम्बर, 1959	137
क्या हुआ?	19 सितम्बर, 1965	138
भेड़ों का जुलूस	26 सितम्बर, 1965	139
नेता	26 दिसम्बर, 1965	139
आपका चित्र	30 जनवरी, 1968	144
झूठ मरे तो कैसे	22 अप्रैल, 1968	144
न्याय-अन्याय	23 अप्रैल, 1968	146
सत्य और झूठ	27 अप्रैल, 1968	148
स्थिति	29 अप्रैल, 1968	150
वह	30 अप्रैल, 1968	151
उत्तरी वियतनाम	10 मई, 1968	151
न्याय की चिड़िया	25 मई, 1968	156
भविष्य	30 मई, 1968	158
नेता	27 जनवरी, 1969	160
हम	27 जनवरी, 1969	161

सिपाही	27 नजवरी, 1969	162
पैसा	30 जनवरी, 1969	163
विकास	31 जनवरी, 1969	165
अखबार	23 मार्च, 1970	166
सिपाही हूँ	4 अप्रैल, 1970	167
आग	23 अक्टूबर, 1970	168
सच-झूठ	23 अक्टूबर, 1970	169
वे	12 दिसम्बर, 1970	170
बाँगलादेश के प्रति	6/8 मार्च, 1971	171
वह	20 जून, 1972	183
अहिंसा...	21 जून, 1972	184
अफसर	25 जुलाई, 1976	185
तुम-हम	1 अगस्त, 1976	186
हम समझे	2 अगस्त, 1976	187
संसद और संविधान	3 अगस्त, 1976	189
साँप और शैतान	13 अगस्त, 1976	190
एकता	3 अक्टूबर, 1976	191
ये साधक	6 अक्टूबर, 1976	193
आज	20 अक्टूबर, 1976	194
गूँज	15 नवम्बर, 1976	195
पहली बार	17 फरवरी, 1977	196
अन्याय की जीत	25 फरवरी, 1977	197
बीच में	28 मार्च, 1977	198
इन्तजार	30 मार्च, 1977	199

❐❐

राजनीति

राजनीति नंगी औरत है
कई साल से जो युरूप में
आलिंगन के अंधे भूखे
कई शक्तिशाली गुंडों को
देश-देश के जो स्वामी हैं
जो महान सेनाएँ रखते
जो अजेय अपने को कहते
ऐसा पागल लड़वाती है
आबादी में बम गिरते हैं;
दल की दल निर्दोषी जनता
गिनती में लाखों मरती है;
नष्ट सभ्यता हो जाती है-
कभी किसी के, कभी किसी के,
गले झूलकर मुसकाती है।
हार-जीत के इस किलोल से
संधि नहीं होने देती है॥

7-2-1946

घोड़े का दाना

सेठ करोड़ीमल के घोड़े का नौकर है
भूरा आरख।–
बचई उसका जानी दुश्मन!

हाथ जोड़कर,
पाँव पकड़कर,
आँखों में आँसू झलकाकर,
भूख-भूख से व्याकुल होकर,
बदहवास लाचार हृदय से,
खाने को घोड़े का दाना
आध पाव ही बचई ने भूरा से माँगा।

लेकिन उसने
बेचारे भूखे बचई को,
नहीं दिया घोड़े का दाना;
दुष्ट उसे धक्का ही देता गया घृणा से!

तब बचई भूरा से बोला :
'पाँच सेर में आध पाव कम हो जाने से
घोड़ा नहीं मरेगा भूखा;

वैसे ही टमटम खींचेगा;
वैसे ही सरपट भागेगा;
आध पाव की कमी न मालिक भी जानेगा;
पाँच सेर में आध पाव तो यों ही भूरा!
आसानी से घट जाता है;
कुछ धरती पर गिर जाता है;
तौल-ताल में कुछ कमता है;
कुछ घोड़ा ही, खाते-खाते,-
इधर उधर छिटका देता है।

आध पाव में भूरा भैया!
नहीं तुम्हारा स्वर्ग हरेगा
नहीं तुम्हारा धर्म मिटेगा;
धर्म नहीं दाने का भूखा!-
स्वर्ग नहीं दाने का भूखा!-
आध पाव मेरे खाने से
कोई नहीं अकाल पड़ेगा।'

पर, भूरा ने,
अंगारे सी आँख निकाले,
गुस्सा से मूँछें फटकारे,
काले नोकीले काँटों से,
बेचारे बचई के कोमल दिल को
छलनी-छलनी कर ही डाला।
जहर बूँकता फिर भी बोला :

'नौ सौ है घोड़े का दाम!–
तेरा धेला नहीं छदाम।
जा, चल हट मर दूर यहाँ से।'

अपमानित अवहेलित होकर,
बुरी तरह से जख्मी होकर,
अब गरीब बचई ने बूझा :
पूँजीवादी के गुलाम भी
बड़े दुष्ट हैं;–
मानव को तो दाना देते नहीं एक भी,
घोड़े को दाना देते हैं पूरा;
मृत्यु माँगते हैं मनुष्य की,
पशु को जीवित रखकर!

12–4–1946

एका का बल

डंका बजा गाँव के भीतर,
सब चमार हो गए इकट्ठा।
एक उठा बोला दहाड़कर :
''हम पचास हैं,
मगर हाथ सौ फौलादी हैं।
सौ हाथों के एका का बल बहुत बड़ा है।
हम पहाड़ को भी उखाड़कर रख सकते हैं।
जमींदार यह अन्यायी है।
कामकाज सब करवाता है,
पर पैसे देता है छै ही।
वह कहता है 'बस इतना लो',
काम करो, या गाँव छोड़ दो।'
पंचो! यह बेहद बेजा है!
हाथ उठायो,
सब जन गरजो :
गाँव छोड़कर नहीं जायँगे,
यहीं रहे हैं, यहीं रहेंगे,
और मजूरी पूरी लेंगे,
बिना मजूरी पूरी पाये
हवा हाथ से नहीं झलेंगे।''

हाथ उठाये,
फन फैलाये,
सब जन गरजे।
फैले फन की फुफकारों से
जमींदार की लक्ष्मी रोयी!!

5-8-1946

कारण-करण

गेहूँ में गेरुआ लगा,
घोंघी ने खा लिया चना,
बिल्कुल बिगड़ा, खेल बना।

अब आफत से काम पड़ा,
टूटा सुख से भरा घड़ा,
दिल को धक्का लगा बड़ा।

जमींदार ने कहा भरो,
सब लगान अब अदा करो,
वरना जिंदा आज मरो।

जोखू ने घर बेंच दिया
रुपया और उधार लिया
खंड-खंड हो गया हिया।

विधि से देखा नहीं गया,
जोखू बाजी हार गया
लकवा उसको मार गया।

10-8-1946

एक भूल

जिन्दगी ने मौत का घूँघट पहनकर रो दिया है।
पाँच नदियों का बड़ा दमदार पानी,
भूलकर अपनी रवानी,
घायलों के घाव से अब रिस रहा है।

रक्त सुन्दर मूर्तियों के भग्न अंगों से बिछुड़कर,
भूमि पर बहकर, तड़पकर,
आज काला हो रहा है–जम रहा है।

कामकाजी हाथ,
चलते–दौड़ते दृढ़ पाँव,
पेड़ की काटी टहनियों से पड़े हैं;
पेट भी तरबूज से फाड़े पड़े हैं;
पीठ पर छुरियाँ चली हैं,
चाकुओं की घाटियाँ गिनना कठिन है;
आँख के उल्लास–दर्पण,
–देखकर सर्वस्व मिटता,
गेह जलता,
गाँव जलता,

लाज की साड़ी उतरती,
रूप पर ही गाज गिरती–
हो गये पत्थर व्यथा के ज्योति खोकर!
माँग का सेंदुर–सोहागी चूड़ियाँ,
लूटकर डाकू–लुटेरे ले गये सब!

लहलहाते खेत की लक्ष्मी सुनहरी,
छिन गयी भुज–बन्धनों से,
हो गयी अब तो परायी नायिका चिरकाल पीड़ित!

वक्ष दृढ़तर फट रहे हैं!
लाड़ले अब भूख से विचलित तड़पते घूमते हैं,
दूध से गीले अधर अब सूखते हैं!
स्वर्ण–संस्कृति के कमल मुरझा रहे हैं!!

हो गयी सुनसान बस्ती!
उड़ गये प्यारे पखेरू छोड़कर घरबार धरती।
राह, चौराहे, गली–कूचे हजारों,
चिह्न पावों के छिपाये प्रियजनों के,
श्वास साधे चुप पड़े हैं।
धूल उड़ती है हृदय की।
प्रेम के पुलकित पुजारी,
प्रेम के सपने मधुरतम,
हो गये अब सब तिरोहित।

मूर्छना की धूप फैली है हताहत।
रात को फाँसी लगी है,
तारिकाएँ मुँह छिपाये रो रही हैं।

दीप की आलोक-गंगा बुझ गयी है।
सब अँधेरा ही अँधेरा हो गया है!

आह! धरती बँट गयी है!
एक हिन्दुस्तान अब दो हो गया है।
आग, पानी, औ' गगन तक बँट गया है।
आदमी का दिल-कलेजा कट गया है।
मंदिरों के देव, मस्जिद के खुदा,
दो बैरियों से लड़ रहे हैं!
आह! धरती बँट गयी है!!
कारवाँ इंसान का सर्वस्व खोकर चल पड़ा है,
भीख का भूखा-लुटा-प्यासा-बिना घरबार का
जैसे कि मुरदों का समाज!

भूल यह ऐसी हुई है,
जो अनेकों पीढ़ियों तक दुख हमें देती रहेगी,
हम कराहा ही करेंगे।

यह कलंकित राष्ट्र-गाथा,
मैं अकेला ही नहीं, लाखों-करोड़ों सुन रहे हैं,
आँख खोले पढ़ रहे हैं,
और अपमानित हृदय को,
रक्त की धारा पिलाकर,
स्वस्थ जीवन-दान का बल दे रहे हैं!!

11-8-1946

पुतलीघर

पुतलीघर श्रमिकों का घर है!
श्रमिकों ने,
दिन की गरमी में,
मिल-जुलकर धरती खोदी है;
लम्बी चौड़ी बुनियादी गहराई दी है;

ईंटा, चूना,
कंकड़, रोड़ा,
सर के ऊपर सब ढोया है;
ईंटा के ऊपर ईंटा रख,
लाखों-लाखों-लाखों ईंटें,
सीमेन्टी चूने से बिल्कुल,
पूरी-पूरी जोड़ दिया है;

चौहद्दी की दीवारों को,
ऊँची चिमनी की काया को,
भीतर, बाहर, गृह भवनों को,
दरवाजे के दृढ़ फाटक को,
अपनी लासानी मेहनत से गढ़ डाला है;
अपना जीवन,
अपना पौरुष,
अपना बहु उपयोगी बहुबल,

ईंटे, चूने में डाला है।
पुतलीघर श्रमिकों का घर है!

श्रमिकों ने भारी संख्या में,
सहयोगी कल पुरजों द्वारा,
ऊँचा-ऊँचा तूल हिमालय,
जल्दी-जल्दी क्षण-फुर्ती से,
धागा-धागा सब कर डाला;
थानों-थानों में बुन डाला!
पुतलीघर श्रमिकों का घर है!!

श्रमिकों ने बुन-बुन कर कपड़े
जन-जन तक
सब तक पहुँचाये;
नंगी नारी का तन ढाँका;
नंगे मरदों का तन ढाका;
मजदूरों को,
धनवानों को,
सेना के सेनानायक को,
सैनिक को,
घायल रोगी को,
बच्चों को,
बूढ़ों को ढाँका;
जाड़ा, गरमी, बरसाती आँधी से आड़ा;
हर शव को कफ्फन पहुँचाया;
जन-जन की सेवा खिदमत की!
पुतलीघर श्रमिकों का घर है!!

यह कहना बिल्कुल भ्रामक है :
पूँजीपति मिल का मालिक है,
श्रमजीवी केवल नौकर हैं।

ऐसा था–
लेकिन, अब यह है :
पुतलीघर श्रमिकों का घर है।
जन-जन के कपड़ों का घर है।
सेवा का, खिदमत का घर है।
मजदूरों के बल एका ने,
मजदूरों की दृढ़ माँगों ने,
मजदूरों की हड़तालों ने,
उनके लोहू की धारा ने,
शोषण को मेटा मारा है।
पुतलीघर श्रमिकों का घर है!!

21-8-1946

हमारी जिन्दगी

हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं।
हमेशा काम करते हैं,
मगर कम दाम मिलते हैं।
प्रतिक्षण हम बुरे शासन–
बुरे शोषण से पिसते हैं!!
अपढ़, अज्ञान, अधिकारों से
वंचित हम कलपते हैं।
सड़क पर खूब चलते
पैर के जूते-से घिसते हैं॥
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी ग्लानि के दिन हैं!!

हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं!
न दाना एक मिलता है,
खलाये पेट फिरते हैं।
मुनाफाखोर की गोदाम
के ताले न खुलते हैं॥
विकल, बेहाल, भूखे हम
तड़पते औ' तरसते हैं।

हमारे पेट का दाना
हमें इनकार करते हैं॥
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी भूख के दिन हैं!!

हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं!
नहीं मिलता कहीं कपड़ा,
लँगोटी हम पहनते हैं।
हमारी औरतों के तन
उघारे ही झलकते हैं॥
हजारों आदमी के शव
कफन तक को तरसते हैं।
बिना ओढ़े हुए चदरा,
खुले मरघट को चलते हैं॥
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी लाज के दिन हैं!!

हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं!
हमारे देश में अब भी,
विदेशी घात करते हैं।
बड़े राजे, महाराजे,
हमें मोहताज करते हैं॥
हमें इंसान के बदले,

अधम सूकर समझते हैं।
गले में डालकर रस्सी
कुटिल कानून कसते हैं॥
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारी कैद के दिन हैं!!

हमारी जिन्दगी के दिन,
बड़े संघर्ष के दिन हैं!
इरादा कर चुके हैं हम,
प्रतिज्ञा आज करते हैं।
हिमालय और सागर में,
नया तूफान रचते हैं॥
गुलामी को मसल देंगे
न हत्यारों से डरते हैं।
हमें आजाद जीना है
इसी से आज मरते हैं॥
हमारी जिन्दगी के दिन,
हमारे होश के दिन हैं!!

8-9-1946

अलीगढ़ की आग

अलीगढ़ में लपट आई, धुआँ आया!
मर्मभेदी घटी घटना दिल डराया,
दुष्ट गुण्डों ने अनेकों घर जलाया।
चल-अचल सम्पत्ति को रज में मिलाया,
ज्वाल ने जिह्वा लपालप लपलपाया।

अलीगढ़ में लपट आई, धुआँ आया!
अन्न के गोदाम का दल बच न पाया,
अन्न के आगार को कोयला बनाया।
सो रहे ज्वालामुखी गिरि को जगाया,
बाड़वानल को धकाधक धकधकाया।

अलीगढ़ में लपट आई, धुआँ आया!
जल उठा मरघट भयंकर चटचटाया,
सर्वभक्षी प्राणघाती खिलखिलाया।
आदमी को जीवितों को भूँज खाया,
मौत का डमरू डिमाडिम डिमडिमाया।
अलीगढ़ में लपट आई धुआँ आया!!

12-9-1946

भारत माँ का गीत

हिन्दुओ मुस्लिम सुनो
मैं रक्त की प्यासी नहीं हूँ।

सिन्धु बादल बन के ऊपर
वृष्टि करता जा रहा है
मेरु हिम का प्राण-शीतल
दुग्ध-धार पिला रहा है
स्नेह-गंगा और यमुना में
अमित लहरा रहा है
स्रोत का बल फोड़ धरती
अम्बु पान करा रहा है
हिन्दुओ मुस्लिम सुनों मैं
रक्त की प्यासी नहीं हूँ!!
हिन्दुओ तन में तुम्हारे
रक्त मेरा रक्त मेरा
मुस्लिमो तन में तुम्हारे
रक्त मेरा रक्त मेरा
हिन्दुओ मुस्लिम तुम्हारे
प्राण में है प्राण मेरा

हिन्दुओ मुस्लिम न जूझो
व्यर्थ बहता खून मेरा
हिन्दुओ मुस्लिम सुनो मैं
रक्त की प्यासी नहीं हूँ!!

अब न तीरथराज में
यमराज सा तुम नाश पाटो
अब न दिल्ली बम्बई में
भाइयों की लाश पाटो
अब न कलकत्ते में तुम
हैवानियत का नाच नाचो
अब न सड़कों और गलियों
में कटारी नाच नाचो
हिन्दुओ मुस्लिम सुनो मैं
रक्त की प्यासी नहीं हूँ!!

मैं नहीं कहती कि अपने
स्वत्व को तुम मत सम्हालो
हिन्दुओ मुस्लिम उसे
हर साँस में फिर फिर सम्हालो
स्वत्व में ही जिन्दगी है
जिन्दगी है जिन्दगी है
प्राण-प्यारी सभ्यता की
जिन्दगी ही जिन्दगी है
हिन्दुओं मुस्लिम सुनो
मैं रक्त की प्यासी नहीं हूँ!!

13-9-1946

हाय न आई

आज भी आई
कल भी आई
रेल बराबर सब दिन आई!
लेकिन दिल्ली से आजादी
अब तक अब तक हाय न आई,
हाय न आई!!

चिट्ठी आई
पत्री आई
डाक बराबर सब दिन आई
लेकिन दिल्ली से आजादी
अब तक अब तक हाय न आई,
हाय न आई!!

आफत ही आफत सब आई
लेकिन दिल्ली से आजादी
अब तक अब तक हाय न आई,
हाय न आई!!

15-9-1946

राधा की आशा

गोकुल सेना में भरती हो
लड़ने को रंगून गया था
लेकिन अपनी प्रिय राधा को
अपने आने की आशा में
बेनिगरानी छोड़ गया था

वह तो खन्दक में लड़ता था
टामीगन की बौछारों से
बैरी की हत्या करता था
राधा को–प्यारी राधा को
भूला ही भूला रहता था

राधा आशा में बैठी थी :
गोकुल तो घर आयेगा ही
बाहों में बँध जायेगा ही
राधा में रम जायेगा ही
राधा का हो जायेगा ही

लेकन गोकुल गया न आया

बैरी ने गोकुल को मारा
खन्दक ने उसको खा डाला
बेचारी राधा जीती थी
झूठी आशा में बैठी थी।

16–9–1946

बैलगाड़ी

बैलगाड़ी राज्य की
चल नहीं सकती प्रगति से दौड़ती।

एक ही तो बैल है!
दूसरा अब भी अलग है–दूर है!!
हाँकनेवाला बड़ा हैरान है–
बैलगाड़ी में लदा है अन्न-वस्त्र;
देश के हर छोर में जा,
देश के हर एक जन को
नाज, कपड़ा बाँटना है;

देर होती जा रही है!
बैलगाड़ी राज्य की
चल नहीं सकती प्रगति से दौड़ती।

19-9-1946

न मारौ नजरिया

हमका न मारौ नजरिया!
ऊँची अटरिया माँ बैठी रहौ तुम,
राजा की ओढ़े चुनरिया।
वेवेल के संगे माँ घूमौ झमाझम,
हमका बिसारे गुजरिया॥

संगी-सँहाती तबलचिन का लै कै,
द्याखौ बिदेसी बजरिया।
गावौ, बजावौ, मजे माँ बितावौ,
ऐसी न अइहै उमरिया॥

राजा के हिरदय से हिरदय मिलावौ,
करती रहौ रँगरलियाँ।
हमका पियारा है भारत हमारा,
तुमका पियारा फिरँगिया॥
हमका न मारौ नजरिया!

28-12-1946

क्या लाये!

लंदन गये–लौट आये।
बोलौ! आजादी लाये?
नकली मिली या कि असली मिली है?
कितनी दलाली में कितनी मिली है?
आधी तिहाई कि पूरी मिली है?
कच्ची कली है कि फूली–खिली है?
कैसे खड़े शरमाये?
बोलौ! आजादी लाये?
राजा ने दी है कि वादा किया है?
पैथिक ने दी है कि वादा किया है?
आशा दिया है दिलासा दिया है!
ठेंगा दिखाकर रवाना किया है!
दोनों नयन भर लाये!
अच्छी आजादी लाये?

28–12–1946

आज

पीड़ित आज महल की मैना
आह लगी काला ज्वर आया
आँधी ने सुख-लोक हिलाया
अंग-अंग को तोड़ झुकाया
रुँधे कंठ कै बैना

पीड़ित आज महल की मैना
सोन-पींजरे में दुख छाया
काल-अँधेरा घिर-घिर आया
रोग-पारखी काम न आया
बुरे करम के धैना

पीड़ित आज महल की मैना
शासित ने तूफान उठाया
शासन को कर चूर गिराया
जनता ने अधिकार जमाया
मुँदे अंत मैं नैना
सोई आज महल की मैना!

10-6-1947

सुनो खबरिया

पंचो! सुनो खबरिया :
रज्जू लड़ा मुकदमा
घर का नाज निकल बरतन से
चूल्हा चक्की जाँता सब से
नाता-रिश्ता ममता तज के
बिका भाव-बेभाव पहुँचकर जल्दी बीच बजरिया!

पंचो! सुनो खबरिया :
रज्जू लड़ा मुकदमा
प्यारी के मनमोहन गहने
अंग-अंग से उतर-उतर के
बिना बजे, बे बोले, चुपके
गिरो-गहन में जाकर पहुँचे डूबे सेठ-दुकनिया!

पंचो! सुनो खबरिया :
रज्जू लड़ा मुकदमा
चिन्ता ने सब देह सुखाई
नींद नहीं आँखों में आई
आफत ही आफत घिर आयी
वह तड़पा जैसे जल बाहर तड़पे दुखी मछरिया!

पंचो! सुनो खबरिया :
रज्जू लड़ा मुकदमा
वह हारा जनता सब हारी
हुई जीत की नयी तयारी
बँधी एक में जनता सारी
बजी गाँव में उथल-पुथल की झन-झन झन-झन थरिया!
पंचो! सुनो खबरिया!!

12-6-1947

मिल मालिक

मिल मालिक का बड़ा पेट है
बड़े पेट में बड़ी भूख है
बड़ी भूख में बड़ा जोर है
बड़े जोर में जुलुम घोर है

मिल मालिक का बड़ा पेट है
अत्याचारी नीति धारता
शोषण का कटु दाँव मारता
गला-काट पंजा पसारता

मिल मालिक का बड़ा पेट है
मजदूरों को नहीं छोड़ता
उन्हें चूसकर तोष तोलता
एकाकी ही स्वर्ग भोगता।

15-6-1947

शपथ

आज हँसे हम।
जमी बर्फ ओठों से पिघली,
फाँसी का फंदा भी छूटा,
गला खुला अब!

ढाई सौ वर्षों के बाद,
हाथ-पाँव की कड़ियाँ तड़कीं,
छाती से सब कीलें उखड़ीं,
सूखा लोहू नस-नस दौड़ा,
हृदय जिया अब!

ढाई सौ वर्षों के बाद,
भाई ने भाई को भेंटा,
माँओं ने पुत्रों को चूमा,
उर-उरोज से पति-पत्नी का,
मिलन हुआ अब।

ढाई सौ वर्षों के बाद,
किन्तु, झोंपड़ी वही खड़ी है,
नयी ईंट तक नहीं लगी है,

बड़ी गरीबी भरी पड़ी है,
वही धुआँ है,
वही क्षुधा है,
वही कर्ज है,
वही सूद है,
वही जमींदारों का छल है,
मानव से मानव शोषित है!

अतः आज हम हँसते हँसते,
नयी शपथ यह प्रथम करेंगे,
शोषक का साम्राज्य हरेंगे,
जनवादी सरकार करेंगे,
निधड़क हम निर्माण करेंगे;
रात और दिन काम करेंगे,
पाँच साल में पूरा भारत,
स्वर्ग करेंगे–स्वर्ग करेंगे!
आज हँसे हम, सदा हँसेंगे॥

10–10–1947

अँग्रेजी पियानो

आज अँग्रेजी पियानो,
राजनीतिक-क्षेत्र में पुंसत्व खोकर,
बेसुरा स्वर रो रहा है।

रीड, परदे, और आत्मा की प्रबलतम तीव्र ध्वनियाँ
जो कि थीं साम्राज्यवादी मान्यताओं की लहरियाँ,
और सारे उपनिवेशों पर निरंकुश नाचती थीं,
युद्ध के उपरांत बिल्कुल क्षीण होकर,
मंद होकर, मिट रही हैं।

एक दिन था जब यही दम्भी पियानो,
वायुयानों को उड़ाता था अनिल में;
और अपने आग के बम,
गाँव-घर में, बस्तियों में फेंकता था,
और साथी सिंधु को आदेश देकर,
दृढ़ जहाजों को चलाकर,
क्रूर तूफानी दलों से जोतता था तट पराये।

किन्तु अब जनतंत्र के दृढ़ मोरचे ने,
हिन्द, बर्मा, अरब, पैलेस्टीन की जन-क्रान्तियों ने,

मारकर हँसिया-हँथौड़े,
देह उसकी तोड़ दी है,
हड्डियों को चरमराकर लुंज उसको कर दिया है।

आज अँग्रेजी पियानो,
साँस धीमी ले रहा है,
चोट खाया, चरमराया, छटपटाता रो रहा है,
और अब ट्रूमैन की डालर-चिकित्सा कर रहा है!!

1-8-1948

यदि आयेगा डालर!

यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आयेगा डालर,
तो वह सौदा-सुलुफ बेचकर,
मातृभूमि का सारा सोना ले जायेगा;
अमरीका में अपनी सड़कें,
उस सोने की बनवायेगा;
और चलेगा उस पर सजकर तामझाम से,
वह शराब के प्याले पीता।

उसके मंत्री और मित्रगण,
राजकाज के सब अधिकारी,
उसके पीछे साथ चलेंगे।

वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में,
भारतीय पूँजीपतियों से साँठ-गाँठकर,
क्रय दिल्ली की राजनीति कर लेगा;
नेहरू और पटेल आदि की मति हर लेगा।

फिर मारेगा जालिम कोड़े;
खून हमारा बह निकलेगा;

पीठ हमारी छिल जायेगी;
बंद करेगा हमें जेल में;
रोजगार भी अपने हित का खूब करेगा;
और हमारे तन की चमड़ी,
अपने 'ड्रम' के मुँह पर मढ़कर,
उसे बजाकर,
तानाशाही की प्रभुता का शोर करेगा।

हम उसके बर्बर शासन से मिट जायेंगे;
हम उसके दुर्दम शोषण से मर जायेंगे;
लेकिन हॉलीवुड के भीतर
नह नाचेगा औ' गायेगा,
मिस अमरीका के प्रिय ओठों पर,
सौ-सौ चुम्बन बरसायेगा!!

9-8-1948

नेता

लन्दन में बिक आया नेता, हाथ कटाकर आया।
एटली-बेविन-अंग्रेजों में, खोया और बिलाया॥
भारत-माँ का पूत-सिपाही, पर घर में भरमाया।
अँग्रेजी-साम्राज्यवाद का, उसने डिनर उड़ाया।।
अर्थनीति में राजनीति में, गहरा गोता खाया।
जनवादी भारत का उसने, सब कुछ वहाँ गँवाया॥
गोरी चमड़ी की बातों ने, उस पर रंग जमाया।
रीझ-रीझकर, उसके आगे, उसने शीश नवाया॥
कूट हलाहल पीकर उसने, अपनी प्यास बुझाया।
और धुएँ में तैर-तैरकर, काफी नाम कमाया॥
वह तो अब बिल्कुल लगता है, टेम्स नदी का जाया।
पौंड देश का भक्त-भिखारी, डालर का दुलराया॥
कहता है ''केदार'' सुनो जी! हमको नहीं सुहाया।
मुरदों ने जिन्दा नेता को अपना कौर बनाया॥
कान काटने गया, न लेकिन, कान काटकर आया।
उल्टे अपनी नाक कटाकर, देखो रोता आया॥

1-11-1948

नेताशाही से

राज करो जी! राज करो जी! दिल्ली के दरबार में।
गाँधीवादी आदर्शों के, सत्यों की किलकार में॥
सोयी खोयी शाहंशाही, रौनक की झनकार में।
सुन्दर-सुन्दर सपने देखो, शासन-शयनागार में॥

राज करो जी! राज करो जी! दिल्ली के दरबार में।
सामन्ती के आलिंगन में, सामन्ती के प्यार में॥
सामन्ती के मन के भीतर, गुपचुप रत्नागार में।
जगमग खूनी दीप जलाए, भारी हाहाकार में॥

राज करो जी! राज करो जी! दिल्ली के दरबार में।
थैलीशाही की गोदी में, लक्षमी के गलहार में॥
सोना चाँदी की खनखन में, काले चोरबाजार में।
रक्षा के कानून बनाये, शोषक के उपकार में॥

राज करो जी! राज करो जी! दिल्ली के दरबार में।
शान धरो जी! शान धरो जी! अपनी शक्ति-कटार में॥
वार करो जी! वार करो जी! अपनी जयजयकार में।
खून करो जी! खून करो जी! नेताशाही प्यार में॥

3-11-1948

जन-क्रान्ति

राख की मुरदा तहों के बहुत नीचे,
नींद की काली गुफाओं के अँधेरे में तिरोहित,
मृत्यु के भुज-बन्धनों में चेतनाहत
जो अँगारे खो गये थे,
पूर्वी जन-क्रान्ति के भूकम्प ने उनको उभारा;
जिन्दगी की लाल लपटों ने उन्हें चूमा-सँवारा,
और वह दहके सबल शस्त्रास्त्र लेकर,
रक्त के शोषण विदेशी शासकों पर,
और देशी भेड़ियों पर!

4-12-1948

मंत्री-मास्टर-संवाद

[1]

मंत्री से अध्यापक बोले : हम हैं बहुत दुखारी।
इससे अपना कष्ट सुनाने, आये शरन तुम्हारी॥
सुन लो थोड़ा कान लगाकर, राजभवन के वासी।
हमसे ज्यादा वेतन पाते, हैं अनपढ़ चपरासी॥
क्या समझा है हमें आपने, बिना उदर का प्राणी?
ओस चाटकर अब जीने में, होती है हैरानी॥
कृपया वेतन शीघ्र बढ़ाओ, देखो यह मँहगाई।
आनाकानी करो न जी तुम, मौत हमारी आई॥

[2]

अध्यापक से मंत्री बोले : तुम हो विद्यादानी।
तुमसे बढ़कर और नहीं है, इस दुनिया में ज्ञानी॥
जो पाते हो वह काफी है, लोभ न और बढ़ाओ।
मोल बेचकर विद्या अपनी, मत अपमान कमाओ॥
मँहगाई है तो क्या इससे, रहो ज्ञान भर जी के।
गुरू हमारे भूतकाल में, रहते थे जल पी के॥
जाओ, अपने घर को जाओ, ऐसी अरज न करना।
भूखे रहना, शिक्षा देना, सदा मौत से लड़ना॥

[3]

मंत्री से अध्यापक बोले : सुन ली सीख तुम्हारी।
चिरकृतज्ञ हैं विद्यादानी, हैं अतिशय आभारी॥

किन्तु न गुस्सा होना प्रभुजी, एक बात बतलाना।
हाथ जोड़कर प्रश्न सुनाते, सूली नहीं चढ़ाना॥
क्या तुमने भी कम वेतन पर, मंत्रीपद स्वीकारा?
क्या तुमने भी बीस टके पर, अपना जीवन वारा?
लो तुम भी अब उतना वेतन, और स्वराज्य चलाओ।
जैसा कहते हो वैसा कर, सबको शीघ्र दिखाओ॥

[4]

अध्यापक से मंत्री बोले : यह तो है बदमासी।
मुझे चाहिए बड़ा रुपैया, मैं रहता हूँ काशी॥
रेल सफर में मैं चलता हूँ, तो होती है बाधा।
एक बार की यात्रा में ही, हो जाता हूँ आधा॥
इसीलिए तो वायुयान की, प्रिय है मुझे सवारी।
धरती में चलने फिरने से, होती है बीमारी॥
मंत्री और गुरु में देखो, भेद बहुत है भारी।
तुम विद्या के सच्चे सेवक, हम अफरसर सरकारी॥

[5]

मंत्री से अध्यापक बोले : हम हड़ताल करेंगे।
बंद करेंगे सभी मदरसे, इस्तीफे हम देंगे॥
अपने प्रण से एक कदम भी, पीछे नहीं हटेंगे।
भूखे और पियासे रहकर, हाहाकार करेंगे॥
यदि मारोगे हमको सोटा, हमको कैद करोगे।
और हमारी आजादी को, सत्यानाश करोगे॥
तो हम तुमको जनमत द्वारा, फिर लाचार करेंगे।
हाँ मँहगाई का भवसागर, निश्चय पार करेंगे॥

[6]

अध्यापक से मंत्री बोले : बातें नहीं बघारो।
मजदूरों की हड़तालों का, नकशा नहीं उतारो॥
जाओ, नहीं छदाम बढ़ेगा, वेतन वही मिलेगा।
मेरा प्रण है नहीं टरेगा, सूरज, चाँद टरेगा॥
मेरे पास बड़े भूखे हैं, शिक्षक वही बनेंगे।
चपरासी से कम पैसों पर, अपना पेट भरेंगे॥
मेरी शिक्षा के जहाज को, अभी दूर है जाना।
सोच समझकर देखो मुझसे, टक्कर लेने आना॥

× × ×

युक्त प्रान्त के शिक्षक दल ने, कर दी तब हड़ताल।
लगे दौड़ने इंस्पेक्टर सब, बुरी तरह बेहाल॥
काँगरेस ने जोर लगाया, हुआ न कुछ परिणाम।
नहीं टूटने का वह लेती, रत्ती भर भी नाम॥
जय हो पूर्णानंद की॥

15-1-1949

फगुआ का व्यंग्य

मैना

गुम्बज के ऊपर बैठी है, कौंसिल घर की मैना।
सुन्दर सुख की मधुर धूप है, सेंक रही है डैना॥
तापस वेश नहीं है उसका, वह है अब महरानी।
त्याग-तपस्या का फल पाकर, जी में बहुत अघानी॥
कहता है केदार सुनो जी! मैना है निर्द्वन्द्व।
सत्य अहिंसा आदर्शों के, गाती है प्रिय छंद॥

मंत्री

नीचे उसके कौंसिल घर में, मंत्री हैं मदछाके।
एक एक से गुनी-धनी हैं, एक एक से बाँके॥
जन जीवन के वह मालिक हैं, वह हैं भाग्य-विधाता।
देख देखकर उनकी लीला, सिर नीचे झुक जाता।।
कहता है केदार सुनो जी! मंत्री हैं सरनाम।
वह लोगों के कब कहने से, होते हैं बदनाम॥

राजधर्म

राजधर्म है : बड़े काम में, छोटे काम भुलाना।
बड़े लाभ के कारन, छोटी जनता को ठुकराना॥
रोटी-रोजी के सवाल को, कोसों दूर भगाना।
सरकारी पेटी में रुपया, टैक्स लगाकर लाना॥
कहता है केदार सुनो जी! राजधर्म लो मान।
मंत्री बनकर पूरे कर लो, सब अपने अरमान।

16-1-1949

जनरक्षा

आजादी है : जनता-रक्षा का हौआ एक बनाओ।
सभी जनों को हड़ताली कह, जल्दी जेल पठाओ॥
टाटा, बिड़ला, डालमिया को, भुज-बंधन में भेंटो।
गोली, आँसू-गैस मारकर, मजदूरों को मेटो॥
कहता है केदार सुनो जी! तुम भी बेचो त्याग।
भेष बदलकर जीभर खेलो, आजादी का फाग॥

20-1-1949

सत्याग्रही

लाठी मार पुलिस के मंत्री, सत्याग्रही पुराने।
कौंसिल घर में जीभ निकाले, चीनी लगे चुआने॥
शांति-सुरक्षा की पट्टी पर, मल्हम लगे लगाने।
अपनी काली करतूतों की, चोटें लगे छिपाने॥
कहता है केदार सुनो जी! धोखा है बेकार।
एक मिनट में मिट जाती है, धोखे की सरकार॥

21-1-1949

लाठी चार्ज

बंद किया 'बेकार गुरु' का, बनिया जी ने आटा।
लात लगी शिक्षा-मंत्री की, पेट गुरु का फाटा॥
हत्या होते देख गुरु की, शिष्यों ने ललकारा।
दौड़े आरत की रक्षा को, तोड़ चवालिस धारा॥
कहता है केदार सुनो जी! व्याकुल हो सरकार।
लगी हवा में लट्ठ चलाने, करती अत्याचार॥

धनुषयज्ञ

शिक्षा मंत्री ने हठ ठाना, जो मेरा धनु तोड़े।
पंतपुरी की सीता ब्याहे, मुझसे नाता जोड़े॥
गाल बजाकर यदि सीता को, कोई हरने आया।
तो मैंने उसको लाठी से, चटनी खूब बनाया॥
कहता है केदार सुनो जी! पंतपुरी का हाल।
धनुषयज्ञ में लाठी चलती, धरती होती लाल॥

फरसा

पंतपुरी के धनुषयज्ञ में, परशुराम जी आये।
देख देखकर बालवृन्द को, बुरी तरह गुर्राये॥
तेज धार का खूनी फरसा, बारम्बार दिखाते।
अँगारे सी आँख निकाले, हत्या से धमकाते॥
कहता है केदार सुनो जी! फरसा है कमजोर।
ऐसे तो लाखों टूटे हैं, छू छिंगुली के छोर॥

21-1-1949

श्वान के शेर

परदेशी गोराशाही के कुत्ते, को दुलरावैं।
बड़े प्यार से उस कुत्ते से, अपना मुँह चटवावैं॥
उसकी टेढ़ी पूँछ पकड़कर, बाधा दूर भगावैं।
उसके पैने दाँत देखकर, बैरी पर लुलुहावैं॥
कहता है केदार सुनो जी! अरे श्वान के शेर।
अब कुत्ते का पेट फाड़कर, घाघ करेंगे ढेर॥

रैन बसेरा-वीर

सूरज निकला, रैन बसेरा, नहीं अभी तक छूटा।
तकिया और पलँग का सपना, नहीं अभी तक टूटा॥
देरी से जगने की आदत, नहीं अभी तक जाती।
काम सिद्ध करने की ताकत, नहीं अभी तक आती॥
कहता है केदार सुनो जी! रैन बसेरा-वीर।
बिना जलाये आग, पकेगी बोलो कैसे खीर?

दिल्ली के भगवान

लाल किले में झंडा फहरा, अब दिल्ली है तेरी।
दर्शन पाकर राज्यलक्ष्मी, बन बैठी है चेरी॥
शासन के अधिकारी बनकर, खींच रहे हो डोरी।
भीतर बाहर शैतानों से, करते हो गँठजोरी॥
कहता है केदार सुनो जी! दिल्ली के भगवान।
त्याग दिया है अब भक्तों ने, धरना तेरा ध्यान॥

22-1-1949

थैलीशाहों की....

थैलीशाहों की यह बिल्ली,
बड़ी नीच है।
मजदूरों का खाना-दाना,
सब चोरी से खा जाती है।
बेचारे भूखे सोते हैं!!

थैलीशाहों का यह कुत्ता,
महादुष्ट है।
मजदूरों की बोटी बोटी,
खून बहाकर खा जाता है।
बेचारे तड़पा करते हैं!!

तैलीशाहों की यह संस्कृति,
महामृत्यु है।
कुत्ता बिल्ली से बढ़कर है।
मानवता को खा जाती है।
बेचारी धरती रोती है!!

8-9-1949

राजनीति का गर्भपात

मैं कहता हूँ :
जिसने भी पंजाब मेल की दुर्घटना की
वह अपना,
अपने जीवन का,
जन्म-ज्ञान का,
अपने तन की रक्त-धार का,
सबसे बहुत बड़ा बैरी है,
क्योंकि आदमी की ताकत का
उसने कुटिल प्रयोग किया है,
पथ को उसने भ्रष्ट किया है;
तेज तौड़ती मेल-ट्रेन को चूर किया है;
और दुराशय से पथिकों के प्राण लिए हैं!!

मैं कहता हूँ : यह कटु करनी,
यह दुर्घटना,
अति अनुचित है-अति अनुचित है;
सब प्रकार से तुच्छ घृणित है;
ऐसा करना न्याय-नीति के अति विरुद्ध है,
यह कोरा आतंकवाद है!!

मैं कहता हूँ :
रेल-पटरियाँ, तार तोड़ने का युग बीता;
राजनीति ने नये-नये आन्दोलन सीखे;

जनता को दुख-दर्द मिटाने के करतब मिल गये अनूठे;
नंगे-भूखों ने पथ अपने नये निकाले;
शोषण-दोहन के विरोध में–
ठोस नीतियाँ आगे आयीं;
श्रमजीवी ने की अगुवाई;
रोटी-रोजी के सवाल लड़ रहे मोर्चे नये बनाये!

मैं कहता हूँ :
अब न कारगर हो सकती हैं तहस-नहस की कार्य-नीतियाँ!
इनमें कोई सार नहीं है!
सिवा हानि के लाभ नहीं है!

मैं कहता हूँ :
यह दुर्घटना करने वाला,
महानीच जल्लाद क्रूर है;
नर-पिशाच है;
दुराग्रही है;
जन-समाज का विध्वंसक है;
जन-संस्कृति का गुमराही है;
मानवता का अपराधी है;
दंडनीय है;
राजनीति का गर्भपात है!!

14-5-1950

जिन्दगी

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
थान खद्दर के लपेटे स्वार्थियों को,
पेट-पूजा की कमाई में जुता मैं देखता हूँ!
सत्य के जारज सुतों को,
लंदनी गौरांग प्रभु की,
लीक चलते देखता हूँ!
डालरी साम्राज्यवादी मौत-घर में,
आँख मूँदे डांस करते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
मैं अहिंसा के निहत्थे हाथियों को,
पीठ पर बम बोझ लादे देखता हूँ।
देवकुल के किन्नरों को,
मंत्रियों का साज साजे,
देश की जन-शक्तियों का,.
खून पीते देखता हूँ,
क्रांति गाते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
राजनीतिक धर्मराजों को जुएँ में,
द्रोपदी को हारते मैं देखता हूँ!

ज्ञान के सब सूरजों को,
अर्थ के पैशाचिकों से,
रोशनी को माँगते मैं देखता हूँ!
योजनाओं के शिखंडी सूरमों को,
तेग अपनी तोड़ते मैं देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
खाद्यमंत्री को हमेशा शूल बोते देखता हूँ;
भुखमरी को जन्म देते,
वन-महोत्सव को मनाते देखता हूँ!
लौह-नर के वृद्ध वपु से,
दण्ड के दानव निकलते देखता हूँ।
व्यक्ति की स्वाधीनता पर गाज गिरते देखता हूँ!
देश के अभिमन्युयों को कैद होते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
मुक्त लहरों की प्रगति पर,
जन-सुरक्षा के बहाने,
रोक लगते देखता हूँ!
चीन की दीवार उठते देखता हूँ!
क्रांतिकारी लेखनी को,
जेल जाते देखता हूँ!
लपलपाती आग के भी,
ओंठ सिलते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
राष्ट्र-जल में कागजी, छवि-यान बहता देखता हूँ,

तीर पर मल्लाह बैठे और हँसते देखता हूँ!
योजनाओं के फरिश्तों को गगन से भूमि आते,
और गोबर चोंथ पर सानंद बैठे,
मौन-मन बंशी बजाते, गीत गाते,
मृग मरीची कामिनी से प्यार करते देखता हूँ!
शून्य शब्दों के हवाई फैर करते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
बूचड़ों के न्याय-घर में,
लोकशाही के करोड़ों राम-सीता,
मूक पशुओं की तरह बलिदान होते देखता हूँ!
वीर तेलंगानवों पर मृत्यु के चाबुक चटकते देखता हूँ!
क्रांति की कल्लोलिनी पर घात होते देखता हूँ!
वीर माता के हृदय के शक्ति-पय को
शून्य में रोते विलपते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
नामधारी त्यागियों को,
मैं धुएँ के वस्त्र पहने,
मृत्यु का घंटा बजाते देखता हूँ!
स्वर्ण-मुद्रा की चढ़ौती भेंट लेते,
राजगुरुओं को, मुनाफाखोर को आशीष देते,
सौ तरह से कमकरों को दुष्ट कहकर,
शाप देते, प्राण लेते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
कौंसिलों में कठपुतलियों को भटकते,

राजनीतिक चाल चलते,
रेत के कानून के रस्से बनाते देखता हूँ!
वायुयानों की उड़ानों की तरह तकरीर करते,
झूठ की लम्बा बड़ा इतिहास गढ़ते,
गोखुरों में सिंधु भरते,
देश-द्रोही रावणों को राम भजते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
नाश के वैतालिकों को
संविधानी शासनालय की सभा में
दंड की डौंड़ी बजाते देखता हूँ!
कंस की प्रतिमूर्तियों को,
मुन्ड मालाएँ बनाते देखता हूँ।
कंस की परतिमूर्तियों को,
मुन्ड मालाएँ बनाते देखता हूँ।
काल भैरव के सहोदर भाइयों को,
रक्त की धारा बहाते देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते,
भीम, अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूँ!
सत्य के हरिचंद को अन्याय-घर में,
झूठ को देते गवाही देखता हूँ!
द्रोपदी को और शैव्या को, शची को,
रूप की दुकान खोले,
लाज को दो-दो टके में बेचते मैं देखता हूँ!!

देश की छाती दरकते देखता हूँ!
मैं बहुत उत्तप्त होकर
भीम के बल और अर्जुन की प्रतिज्ञा से ललककर,
क्रांतिकारी शक्ति का तूफान बनकर,
शूरवीरों की शहादत का हथौड़ा हाथ लेकर,
चोट करता दौड़ता हूँ कड़कड़ाकर,
शृंखलाएँ तोड़ता हूँ
जिन्दगी को मुक्त करता हूँ नरक से!!

15-8-1950

वोट न माँगे पैहौ

[1]

वोट न माँगे पैहौ भैया!
जो तुम माँगै ऐहौ।
आहें पैहौ, आँसू पैहौ,
रौंदी माँटी पैहौ॥
जौन गली माँ, जौन दुआरे,
जौन गाँव माँ जैहौ।
आपन मेटी, आपन लूटी,
जारी झाँकी पैहौ॥

[2]

वोट न माँगे पैहौ भैया!
जो तुम माँगै ऐहौ।
खाली खाली पेट खलाये,
भूखी ठठरी पैहौ॥
कारी-कारी करतूतन कै,
काटी खेती पैहौ।
जोर जुलुम से ठोंकी पीटी,
आपन छाती पैहो॥

[3]

वोट न माँगे पैहौ भैया!
जो तुम माँगै ऐहौ।
नदिया नारे अउर कुआँ माँ,
डूबैं का जल पैहौ॥
जाल न डारैं पैहौ पै हाँ,
जो तुम डारैं ऐहौ॥
वोट हमार न फाँसै पैहौ,
मछरी मारैं पैहै॥

[4]

वोट न माँगे पैहौ भैया!
जो तुम माँगै ऐहौ।
खद्दर ओढ़े, खीस निपोरे,
नाहक गाल बजैहौ॥
गाल न गुलगुल चाटैं पैहौ,
जो तुम चाटैं ऐहौ।
तरुआ चाटैं, एँड़ी चाटैं,
बातैं छाटैं ऐहौ।

[5]

वोट न माँगे पैहौ भैया!
जो तुम माँगै ऐहौ।
हमका नासैं, हमका म्याटैं,
अउर न तापैं पैहौ।
हाथ न काटैं पैहौ कौनौ,
जो तुम काटैं ऐहौ।

उलटा आपन मूँड़ कटाये
मरघट घाटै जैहौ॥

[6]

भाषत है 'केदार' सुनौ जी!
एकौ वोट न पैहौ।
आपन छाती घम-घम कुटिहौ,
बिधवा अस पछितैहौ।
कुरसी माँ तुम ऐंठि गये हौ,
अउर न ऐंठैं पैहौ।
रामराज के सिंहासन माँ,
फेरि न बैठें पैहौ॥

2-9-1951

हम तौ उनका वोट न देबै

[1]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
रोटी कपरा लत्ता खातिर,
जो हमका तरसाइन हैं॥
अरजी का फरजी कै दीन्हिन,
गरजी जान भगाइन हैं।
आजादी के टोपीधारी,
हमका भीख मँगाइन हैं॥

[2]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
गल्ला गाड़िन गोदामन माँ,
चोरबजार चलाइन हैं॥
गेहूँ, चाउर अउर चना का,
पउवन माँ बिकवाइन हैं।
रत्ती-रत्ती तेल किरोसिन,
अमरित अस बँटवाइन हैं॥

[3]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
राह चलत जो राहैं रोकिन,
काँटै काँट बिछाइन हैं॥
सत्यानाशी नीति निबाहिन,
खूनै-खून बहाइन हैं।
जनता के घर डाका डारिन,
डंका नास बजाइन हैं॥

[4]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
मुँह माँ तालाबंदी कीन्हिन,
हमरे बोल चुराइन हैं॥
मारे डर के छापौखाना,
गूँगा कै रुकवाइन हैं।
काली करनी मूदै खातिर,
कलमन का दफनाइन हैं॥

[5]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
खेतन माँ जो बीज न बोइन,
फसलैं नहीं उगाइन हैं॥
दीवन माँ जो तेल न डारिन,
अँधियर नहीं मिटाइन हैं।

बेलिन माँ जो फूल न लाये,
आसा नहीं खिलाइन हैं॥

[6]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
आपन खीसा खास बढ़ाइन,
पैसा खूब कमाइन हैं॥
टाटा बिड़ला कै साझे माँ,
लूटै लूट मचाइन हैं।
छुट्टा स्वारथ की खेती माँ,
जिउ के दिया बुझाइन हैं॥

[7]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
जो पश्चिम के बंगाले के,
मुँह से कौर छिनाइन हैं॥
भूखमरी के डंडा मारिन,
घर के चूल्ह बुताइन हैं।
रोटी चाउर के स्वादिन का,
मछरी अस तलफाइन हैं॥

[8]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
जो भारत का अमरीका का,
पाही देस बनाइन हैं॥

अमरीका कै बनियागीरी,
हमरे ठाँव बुलाइन हैं।
डालर के हाथन माँ सौंपिन,
हमका बेंच बहाइन हैं॥

[9]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
कसमीरी जनता कै घरनी,
अमरीका पहुँचाइन हैं॥
केसर कै, चिन्नार बिरिछि कै,
इज्जत खोय गँवाइन हैं।
झरना झील नदी परवत का,
परबस आज बनाइन हैं॥

[10]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
तीन टका माँ नौकर राखिन,
लरकन का पढ़वाइन हैं॥
करिया अच्छर भैंस बरोबर,
गोबर ग्यान बताइन हैं।
तीन-पाँच कै दीन्हिन सिच्छा,
बारह बाट बनाइन हैं॥

[11]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।

फौज पुलिस माँ रुपिया मेलिन,
खूनी बजट बनाइन हैं॥
सिच्छा के कोपीन लगाइन,
लौका हाथ थमाइन हैं।
विद्या का लावारिस कीन्हिन,
मूरख मंत्र रटाइन हैं॥

[12]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
हमरी खलरी खैंचि खसोटिन,
रोऔं बहुत सताइन हैं॥
नोन मिरिच ऊपर से बूँकिन,
कद्दू अस कटवाइन हैं।
थानेदार कलट्टर, ह्वैके,
बाँदर नाच नचाइन हैं।

[13]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
झूठ मुकदमा माँ जो हमका,
झींगुर अस फँसवाइन हैं॥
पंचाइत की सरपंची माँ,
जीतै नरक दिखाइन हैं।
गाँव-राज के मुरदाघर माँ,
हमका कैद कराइन हैं॥

[14]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
नानी के आगे नाना की,
जो पगरी उतराइन हैं॥
भौजी के आगे भैया की,
जो पसरी पिसवाइन हैं।
हमरे तन का लोहू लैकै,
जो गगरी भरवाइन हैं॥

[15]

हम तौ उनका वोट न दैबै,
जो हमका बधियाइन हैं।
पाँच बरिस के भीतर हमका,
नर-कंकाल बनाइन हैं॥
भाषत है ''केदार'' सुनौ जी,
जालिम भीख न पाइन हैं।
जालिम के बकसन माँ कोऊ,
एकौ वोट न डाइन हैं॥

10-9-1951

देख देख रामराज पीर नहीं तजती

देखी तेरी तानाशाही बार बार बढ़ती

लोहू की पियासी तेरी तेज धार चलती
आर पार पार कर सीने से निकलती
शांति नहीं चैन नहीं धीर नहीं धरती
वार पर वार बिना प्यार के है करती

देखी तेरी तानाशाही बार बार बढ़ती

मेघ के समान आसमान में घुमड़ती
रात के समान घोर अंधकार भरती
साँप के समान फन काढ़ काढ़ चलती
देश को दिनेश को हरेक को निगलती

देखी तेरी तानाशाही बार बार बढ़ती

धेनु धीर त्यागती है, बाघिनी विलपती
मोर के मिलाप में मयूरिनी सिसकती

भामिनी मृगी मलीन मूक मन मरती
कामिनी कराहती, कपोतिनी कलपती

देखी तेरी तानाशाही बार बार बढ़ती

काट काट रात बड़ी काटे नहीं कटती
चाट चाट ओस पड़ी प्यास नहीं घटती
सूँघ सूँघ शुष्क फूल भूख नहीं मरती
देख देख रामराज पीर नहीं तजती

15–9–1951

आग लगे इस राम-राज में

[1]

आग लगे इस राम-राज में
ढोलक मढ़ती है अमीर की
चमड़ी बजती है गरीब की
खून बहा है राम-राज में
आग लगे इस राम-राज में

[2]

आग लगे इस राम-राज में
रोटी रूठी, कौर छिना है;
थाली सूनी, अन्न बिना है,
पेट धँसा है राम-राज में
आग लगे इस राम-राज में।

18-9-1951

वायस ऑव अमरीका को सुनकर

[1]

झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा
चाहे जैसा अखबारों में
जितना चाहे झूठ उछालो
हर पन्ने में, हर कालम में,
जितना चाहे झूठ छपा लो
पल्टन की पल्टन शब्दों की
जितना चाहे आज बढ़ा लो
जोर जुलुम से या स्वारथ से
जितना चाहे झूठ गढ़ा लो
झूठ तुम्हारा पल न सकेगा
पल न सकेगा
पल न सकेगा
झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा

[2]

झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा
जैसा चाहे वैसा गाओ
जितना चाहे झूठ सुनाओ
अमरीकी बदनाम गगन से
जितना चाहे बम बरसाओ
दुनिया के कोने कोने में
जितना चाहे गम बरसाओ
झूठे से भी ज्यादा झूठा
जितना चाहे झूठ बिछाओ
झूठ तुम्हारा पल न सकेगा
पल न सकेगा
पल न सकेगा
झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा

[3]

झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा

झूठ तुम्हारा झूठ रहेगा,
कूड़ा करकट झूठ रहेगा
गंदी नाली के पानी में
रोज तुम्हारा झूठ बहेगा
साथ तुम्हारा झूठ न देगा
नाश तुम्हारा झूठ करेगा
आज नहीं कल निश्चय जानो
शीघ्र तुम्हारा झूठ हरेगा
झूठ तुम्हारा पल न सकेगा
पल न सकेगा
पल न सकेगा
झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा

[4]

झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा
सत्य हमारा वह सूरज है
जो दिल से बाहर निकलेगा
तेज उजाले की ठोकर से
झूठ तुम्हारा ढह बिखरेगा

जनता के पैरों के नीचे
वह जल्दी ही राख बनेगा
फौजी वर्दी त्यागे रिजवे
रोता अपने हाथ मलेगा
झूठ तुम्हारा पल न सकेगा
पल न सकेगा
पल न सकेगा
झूठ तुम्हारा चल न सकेगा
चल न सकेगा
चल न सकेगा

30–9–1951

अमरीका से

गेहूँ देकर, छिंगुली छूकर, हाथ गहोगे।
पास बैठकर, चिकनी-चुपड़ी बात कहोगे॥
बातों में तुम हमको सबको प्यार करोगे।
लेकिन स्वारथ का सौदा-व्यापार करोगे॥

चीजें बनकर, पुर्जे बनकर, आ जाओगे।
भारत की सूनी हाटों में छा जाओगे॥
धोके के धंधे में कूड़ा दे जाओगे।
दीनों के हाथों का सोना ले जाओगे॥

जल्दी जल्दी दिल्ली को न्यूयार्क करोगे।
चुपके चुपके हर लेने का कार्य करोगे॥
शासन की डोरी खींचोगे, वार करोगे।
भोली जनता का पूरा संहार करोगे॥

ले जाओ तुम अपना गेहूँ, वापिस जाओ।
गेहूँ देकर दास बनाने पास न आओ॥
दानी! हमको क्रोध नहीं अब और दिलाओ।
भागो जल्दी, जल्दी अपने प्राण बचाओ॥

10-10-1951

मैं

गीत हूँ लेकिन किसानो!
मैं तुम्हारी वेदना हूँ।
बंधनों से मुक्त होने की
तुम्हारी चेतना हूँ॥
चोट पर मैं चोट करने
की तुम्हारी प्रेरणा हूँ।
आत्मवंचक प्राणघाती
मैं नहीं अवहेलना हूँ॥ 1॥

मैं तुम्हारी जिंदगी हूँ,
शेर-सा ढाला गया हूँ।
मैं तुम्हारे खून में ही
क्रांति से पाला गया हूँ॥
मैं तुम्हारा कर्म सूरज,
खेत में डाला गया हूँ।
सेठ साहूकार जैसे
शत्रु से घाला गया हूँ॥ 2॥

जानता हूँ मैं तुम्हारे
संकटों को जानता हूँ।
सर्वनाशी शोषकों को
कंटकों को जानता हूँ॥
स्वार्थ सेवी पेटुओं को
वंचकों को जानता हूँ।
मानवी स्वाधीनता के
भंजकों को जानता हूँ॥ 3 ॥

11–10–1951

काका-काकी संवाद

काका बोले : सुनती हौ, हम टिकटु न पावा
जेल गयेन, सब कष्टु उठावा, लाभु न पावा
सौ रुपिया दै पूँजिव आपन मेलि बहावा
हम नेतन से जेब कटावा, ठोकर खावा

काकी बोलीं : यह कैसे भा हमैं बताओ?
आदि अन्त से पूर कहानी हमैं सुनावो।
कहत रहिवँ मैं ऊपर जावो, भेंटु चढ़ावो।
सिंहासन माँ बैठे नेतन का फुसलावो॥

काका बोले : हम का जानी गलती होई
कौंसिलघर माँ मूढ़ जनन कै भरती होई
अनपढ़ पाई टिकटु न पंडित पाई कोई
काँगरेस दुख दारुन देई, जनता रोई

काकी बोलीं : अचरज ह्वैगा द्याखौ भैया!
हाय हाय री अनरथ ह्वैगा मोरी मैया!
पैसा दीन्हिसि टिकटु न पाइसि मोरा सैंया!
गाज गिरी है हमरे ऊपर दैया! दैया!!

काका बोले : गला न फारो, धीरज धारो
जोर जोर से नाहीं रोओ, आँसु न ढारो
काँगरेस की बंटाधारी नीति बिसारो
रामराज के राजतिलक माँ बिघ्न न डारो

काकी बोलीं : रामराज यह हमैं न भावै
क्रूर कुचाली हमरे ऊपर गाज गिरावै
न्याय नहीं, अन्याव करै, अधिकार छिनावै
खद्दर धारे गाँधी जी का नाँव लजावै

काका बोले : ना छाँड़ित जो थानेदारी
तो हम अब तक निहचय मारित मौज करारी
रोज रोज हम रकमैं काटित भारी भारी
काँगरेस के नहीं बनित हम आजु भिखारी

काकी बोलीं : बीस बरिस भे तुमका छाँड़े
कउनिव लायक रहेव न नेता बनिकै पाँड़े
सून परे हैं द्याखौ घर के बरतन भाँड़े
कपरा लत्ता द्याखौ ह्वैगे खाँड़े-खाँड़े

काका बोले : अब का होई रोये-गाये
पउवन सेरन आपुन लोहू अउर सुखाये
एक यहै अब साध हमारी, वोट न पावै
हारै ऐसी हार काँगरेस फेरि न आवै

31-10-1951

चुनाव मोरचे की अन्तयाक्षरी

काँगरेस के राज में,
आयो नहीं बसंत।
अपत कटीली डार के,
गावत हैं गुन पंत॥

तन टूट्यो, मन टूटिगो,
धन की रही न आस।
काँगरेस के राज में,
जनता फिरै हतास॥

सदा अँधेरी रहत है,
नेता जी की देह।
नैनन में दीपक नहीं,
हिरदय नहीं सनेह॥

हल जोतै, धरती जुतै,
खेत बीज को खाय।
मुंशी जी के राज में
अन्न न उपजै भाय॥

यश अपयश विधि हाथ है,
नहिं नेतन को जोर।
यहै देख बाढ़े बड़े
सेठ महाजन चोर॥

रचना ऐसी रचि रहे,
रामराज के वीर।
सुख धरती व्यापै नहीं,
दिन दिन बाढ़ै पीर॥

राम न ऐसा करि सके,
जैसा नेतन कीन्ह।
लोगन का बनवास दै,
सुख-सम्पति हरि लीन्हि॥

हँसिकै मारैं बीजुरी,
बोलि करैं कुहराम।
लोकतंत्र के संत ये,
पूरे हैं बदनाम॥

मंच चढ़ैं, ऊँचे उठैं,
नीचे लखैं न कोय।
खेत करैं आकाश माँ,
का धरती माँ होय॥

यश गावैं, न्यूट्रल रहैं,
आगे धरैं न पाँव।
नेहरू जी की नीति से,
टूमन मारै दाँव॥

वर माँगैं भगवान से,
काम न मति से लेत।
रोटी को परसैं नहीं,
रोजीहू ना देत॥

तौल रहे स्वारथ तुला,
परमारथ के काज।
मन ऐसा भारी भया,
टूटी डोर समाज॥

जनवादी अखबार को,
ऐसी मारो मार।
प्रेस ऐक्ट से बंद हो
सीधा सत्य प्रचार॥

राजा जी के हाथ से,
प्रेस गयो सुरधाम।
जनता विलपै बावरी,
काम न आवैं राम॥

मरना है तो आज मर,
कल है दूर अपार।
गोली आँसू गैस की,
कायम है सरकार॥

राजसभा के औलिया,
काम न आवैं आज।
लोकतंत्र की आड़ से,
मारैं कसि कसि गाज॥

जहँ लग नेता राज है,
तहँ लग बंटाधार।
पूँजीपति की गोद में,
खेल रही सरकार॥

रसरी बालू की बटौ,
बाँधौ धीरज बैल।
नेता ऐसा कहत हैं,
चलिये तप की गैल॥

लाज उन्हैं आवै जिन्हैं,
लोकतंत्र का ध्यान।
कामनवेल्थी आन में,
टूटी मान-कमान॥

नोन तेल नहिं देत हैं,
दौरि करत हैं चोट।
वोट न इनको दीजिये,
काम करत हैं खोट॥

8-9-1951

जन-गीत

दुख ना गयो,
दरिद ना छूटै,
चोर-बजारी दिन-दिन लूटै,
धीरज-धनुही फुस-फुस टूटै,
ऐसि राज का भंडा फूटै!

सुख ना फरै,
करम ना फूलै,
अन्न अकाल दुआरे, झूलै,
मारै पेट, करेजा हूलै,
ऐसि राज ना हमका भूलै!

धन ना जुरै,
गरीबी आवै,
हाँथन का श्रम चोर चुरावै,
ऊँचे महलन माँ मुसकावै,
ऐसि राज ना हमका भावै!

भय ना भगै,
भरम ना जावै,
काली करनी हाड़ बजावै,
जनता का दुख नाच नचावै।
ऐसि राज गारत ह्वै जावै!

14–1–1952

वह

सच है तुमने
निरपराध को अपराधी-सा,
अफसरशाही के प्रकोप से,
नागपाश में जकड़ लिया है;
निस्सहाय है आज
किंतु वह नहीं मरा है-नहीं मरेगा!

सच है तुमने
जीवन का स्वर,
और सत्य का मुखर सबेरा,
कारागृह की दीवारों में कैद किया है;
निस्सहाय है आज
किंतु वह नहीं मरा है-नहीं मरेगा।

26-11-1952

साथी

झूठ नहीं सच होगा साथी!
गढ़ने को जो चाहे गढ़ ले
मढ़ने को जो चाहे मढ़ ले
शासन के सौ रूप बदल ले
राम बना रावण सा चल ले

झूठ नहीं सच होगा साथी!
करने को जो चाहे कर ले
चलनी पर चढ़ सागर तर ले
चिउँटी पर चढ़ चाँद पकड़ ले
लड़ ले ऐटम बम से लड़ ले

झूठ नहीं सच होगा साथी!

27-11-1951

जब-तब

जब कलम ने चोट मारी
तब खुली वह खोट सारी
तब लगे तुम वार करने
झूठ से संहार करने

सोचते हो मात दोगे
जुल्म के आघात दोगे
सत्य का सिर काट लोगे
रक्त जीवन चाट लोगे

भूल जाओ यह न होगा
जो हुआ है वह न होगा
लेखनी से वार होगा
वार से ही प्यार होगा

कल नगर गर्जन करेगा
क्रोध विष वर्षन करेगा
सत्य से परदा फटेगा
झूठ का तब सिर कटेगा

27-11-1952

प्रश्न

मोड़ोगे मन
या सावन के घन मोड़ोगे?
मोड़ोगे तन
या शासन के फन मोड़ोगे?
बोलो साथी! क्या मोड़ोगे?

तोड़ोगे तृण
या धीरज धारण तोड़ोगे?
तोड़ोगे प्रण
या भीषण शोषण तोड़ोगे?
बोलो साथी! क्या तोड़ोगे?

जोड़ोगे कन
या विश्वासी मन जोड़ोगे?
जोड़ोगे धन
या मेधावी जन जोड़ोगे?
बोलो साथी! क्या जोड़ोगे?

12–2–1953

नौजवान से

कामधेनु-सी काँगरेस अब
सुरसा जैसा मुँह बाये है!
शासन के अधिकारी नेता
डायर की वर्दी पहने हैं;
सत्य अहिंसा के अवतारी अब हिंसा का रूप धरे हैं,
अंग्रेजी पिस्तौल चलाकर,
कफन लपेटी आजादी को
जन-सेवक का खून चटाकर,
रामराज्य की कथा सुनाते सौ प्रयास से जिला रहे हैं!!

राष्ट्र-जागरण की बेला में,
गंगा-यमुना की धाराएँ
तानाशाही की गोदी में तड़प रही हैं।
उपजाऊ धरती के अंकुर कुचल गये हैं;
सुन्दर कलियाँ, फूल महकते मसल गये हैं!!

यही समय है जब नृशंसता का विरोध डटकर करना है,
सारी जनवादी ताकत को आगे बढ़ लोहा लेना है;
डायर की वर्दी नेता से हर लेनी है;

अंग्रेजी पिस्तौल छीनकर,
उसके हाथों में टेसू की फूली लाल छड़ी देना है!!
चन्दन की शीतल खुशबू से मन हरना है;
स्वस्थ नवोढ़ा आजादी का
घूँघट खोल दिखा देना है;
वासन्तिक हँसते यौवन से भू को स्वर्ग बना देना है;
गंगा-यमुना की धाराएँ
कंचन-कूलों से टकरा कर लहराना है;
नौजवान भारत की प्रतिमा चमकाना है!!

8-11-1953

सुनो–

मंत्रियो! मुसकान से या शान से शासन न बदला
खद्दरी यश–गान से खलिहान में आयी न कमला

पंचवर्षी योजना भी हो रही है आज विफला,
खेत के हर बीज से है रोगिनी का हाथ निकला

माननीयो! कागजी फरमान से सूरज न निकला
आबनूसी रात का फैला हुआ काजल न पिघला

वोट लेकर चोट करने से हुआ है देश दुबला
हाय तुमने आदमी का शीष कुचला वेश कुचला

शूरमाओ! पालने में पूतना के अब न झूलो
आदमी की खाल ओढ़े आदमी को अब न भूलो

शांति के सम्राट मेरे आक्षितिज आलोक उगलो

9–11–1953

पाकिस्तान से

मैं कहता हूँ :
तूने खूनी अक्षर लिखकर,
सिर पर अपने आफत मढ़ ली;
अमरीकी बंधन में बँधकर,
तूने अब तो शूली चढ़ ली!

मैं कहता हूँ :
तेरी ऊँची तुर्की टोपी,
लाल सुबह की तरह चमकती-
तेरे सिर से नीचे उतरी-
और पड़ी है ऐसी उल्टी-
जैसे तेरी किस्मत उल्टी!

मैं कहता हूँ :
मुझको गम है;
मेरे मन में विष-मंथन है;
तेरे कारन मैं चिन्तित हूँ-
और व्यथित हूँ!!

तूने अपनी प्यारी मस्जिद,
जंगी बूचड़खाना कर दी;

तोपों के आगे सिजदे कर,
डालर की मटियारी कर ली!!

मैं कहता हूँ :
तूने प्रिय नदियाँ बेची हैं!
अल्ला की रहमत बेची है!
गीतों गाती,
मन बहलाती,
मस्त हवाएँ तक बेचीं हैं!
कलियों के दामन बेचे हैं।
और न जाने कितनी कितनी
रूहों की खुशबू बेची है!

और सुनाऊँ :
तूने घर के
हँसते गाते झरने बेचे;
लहरें लेते
बालाओं के यौवन बेचे,
मानव का वह जीवन बेचा–
जो पकता है,
रस देता है,
फल देता है;
आशा से कल को गढ़ता है,
धरती को सुन्दर करता है,
सुख भरता है!!

यार पड़ोसी!
मैं कहता हूँ :
तू हो जा होशियार पड़ोसी!
अपने अक्षर आप बदल दे;
खूनी लिपि को पानी कर दे,
पानीदार जवानी लेकर–
मानी मस्तक ऊँचा कर ले!
आफत का सिर नीचा कर दे;
लाल–सुबह–सी तुर्की टोपी,
फिर से अपने सिर पर रख ले!

और नमाजी!
हर पत्ते में हुस्न खुदा का,
हर माथे पर उसकी आयत,
और उसी के दिल की धड़कन
नूरानी नदियों में पढ़ ले!!

मैं कहता हूँ :
हत्यारों को बाहर कर दे;
उल्टे पाँवों चलता कर दे;
खूनी तोपें वापिस कर दे,
और अमन को जायज कर दे,
वरना मेरे दोस्त पड़ोसी!–
तेरे घर की तेरी जनता।
तेरा ही शासन तोड़ेगी,
और नये मेमार नयी तामीर करेंगे।
रोज नया इतिहास लिखेंगे!!

मैं कहता हूँ :
अब पूरब के इस आँगन में,
केवल पूरब वाले होंगे,
पच्छिम के जालिम व्यौपारी-
यहाँ न होंगे!
आग जलाकर चीन जगा है,
सूरज हर इंसान बना है,
बड़ा एशिया
खड़ा आज ललकार रहा है :
हम अपना निर्माण करेंगे॥

20-1-1954

सवाल-जवाब

[जन-गीत]

[1]

नेता है देसी-समैया सुदेसी
करनी करैया है गोबर-गनेसी
कैसे करैं हम राज जी?
पीड़ा हरैं हम आज जी??

नेता को टारो-समैया सुधारो
गोबर-गनेसी की कलई उतारो
ऐसे करौ तुम राज जी
पीड़ा हरौ तुम आज जी

[2]

थाना है देसी, सिपाही सुदेसी
रच्छा करैया है जुल्मी महेसी
कैसे बचै धन-धाम जी?
फूले फलै जन राम जी??

[3]

थाना हो देही–सिपाही सनेही
पहरा देवैया हो ग्यानी विदेही
ऐसे बचै धन–धाम जी
फूलै फले जन राम जी

[4]

दावा है देसी–गवाही सुदेसी
निरनय करैया की मति है भदेसी
कैसे चलै अब न्याय जी?
काटै–कटै अन्याय जी??

दावा हो ज्वाला–गवाही उजाला
निरनय करैया हो मानस–मराला
ऐसे करौ जब न्याय जी
काटे–कटै अन्याय जी

5–2–1954

वास्तव में

पंचवर्षी योजना की रीढ़ ऋण की शृङ्खला है,
पेट भारतवर्ष का है और चाकू डालरी है।
संधियाँ व्यापार की अपमान की कटु ग्रंथियाँ हैं,
हाथ युग के सारथी हैं, भाग्य-रेखा चाकरी है॥

26-4-1954

मुक्त चीन में निर्माणों से शासन होता

क्या हीरा, इस्पात, और क्या बज्र कठिनतर?
क्या गज, ग्राह, बराह, गरुण, क्या व्याघ्र सबलतर?
इनसे सबसे कठिन, प्रबलतर और सबलतर,
पूरब में है मुक्त देश यह चीन बृहत्तर॥

खेतों की धरती कठोर भी अति उदार है।
कर्मठ कृषकों में भर देती अमर प्यार है॥
जहाँ देखिये वहाँ अन्न का प्रिय पसार है।
आशा अभिलाषा लहराती आर-पार है॥

कल, करघे, फैक्टरियों में उत्पादन होता।
उत्पादन से नव जीवन-सम्पादन होता॥
नित नूतन श्रमवीरों का अभिवादन होता।

कोई नहीं अशिक्षित, भिक्षुक, और कुचाली।
चीन देश को पाल रहा है माओ माली॥
नारी नहीं अपावन दासी, वह है आली।
कर्म, कला, कौशल की सबसे फूली डाली॥

माओ का यह देश नियति का नहीं दास है।
हिंसक परदेसी के मुख का नहीं ग्रास है॥
जन-जीवन को नहीं लपेटे नाग-पाश है।
जनता ही है सूर्य, सबेरे का प्रकाश है॥

ऐसे उन्नत चीन देश को नमस्कार है।
एक नहीं शत् कोटनीस का अमर प्यार है॥
पूरब की प्यारी धरती का मुक्त द्वार है।
चीन हमारी मानवता का कंठहार है॥

12-9-1954

मजदूर का जन्म

एक हथौड़ेवाला घर में और हुआ!
हाथी-सा बलवान,
जहाजी हाथोंवाला और हुआ!
सूरज-सा इंसान,
तरेरी आँखोंवाला और हुआ!!
एक हथौड़ेवाला घर में और हुआ!
माता रही विचार :
अँधेरा हरनेवाला और हुआ!
दादा रहे निहार :
सबेरा करनेवाला और हुआ!!
एक हथौड़ेवाला घर में और हुआ!
जनता रही पुकार :
सलामत लानेवाला और हुआ!
सुन ले री सरकार!
कयामत ढानेवाला और हुआ!!
एक हथौड़ेवाला घर में और हुआ!

3-10-1954

हमारे अफसर आदमखोर

टैक्सों की भरमार–
हमारी करती है सरकार!
जीवन का अधिकार–
हमारी हरती है सरकार!!

होती है कम आय,
हमारा घटता है व्यवसाय!
होता है अन्याय,
हमारा लुटता है समुदाय!!

करते हैं व्यभिचार–
हमारे अफसर आदमखोर!
हम तो हैं लाचार,
हमारे अफसर हैं झकझोर!!

गायें कैसे गान?
हमारी दुर्बल है मुसकान!
जीवन है अपमान,
हमारी निर्बल है सन्तान!!

13–10–1954

रोते मँहगू गफलू शेख

पढ़ा बहुत हमने कानून
देखी दुनिया, चाटा नून
क्या दिल्ली क्या देहरादून
जहाँ गये हम, सूखा खून

चौतरफा है भ्रष्टाचार
लम्बे चौड़े खोले द्वार
देसी और विदेसी यार
काट रहे मुफ्ती कलदार

कागज के बजते हैं ढोल
गाँव नगर में पोलम्पोल
अफसर अमला रहे टटोल
पैसा रुपया गोलमगोल

खाली जेबें भरते चोर
डंडा और दमन के जोर
जीवन को चरते हैं ढोर
बाकी बचा न कोई छोर

थानेदार बिछाते जाल
वेतन करते नहीं हलाल
लम्पट का करते प्रतिपाल
जल्दी होते मालामाल

कोई नहीं पकड़ता लूट
मिली हुई है भारी छूट
तंग गई धीरज की टूट
भाग्य गये जनता के फूट

सब डिप्टी हैं अनुभवहीन
जन-कारज में निरे नवीन
खाते भाँग-बजाते बीन
ताका करते उनको दीन

जिलाधीश के बुरे हवाल
टालमटूली चलते चाल
मंत्री जी की साधे ढाल
मस्त बजाते फूले गाल

लेखपाल लिखते हैं लेख
गाड़ रहे पेटों पर मेख
रोते मँहगू गफलू शेख
खसरा और खतौनी देख

पंचायत में मिला न न्याय
इससे रोते बिना उपाय
पेट खलाये चम्पतराय
भोंदू भग्गू रामसहाय

टैक्सों से होकर लाचार
खोकर धन, होकर भू-भार
अनपढ़ सच्चे भीरु गँवार
जीवन से जाते हैं हार

विद्या के मँहगे हैं दाम
पढ़ना नहीं सहज है काम
टीचर करते हैं कुहराम
बालक होते हैं बदनाम

लाखों माँग रहे हैं भीख
मंत्री जी देते हैं सीख
जल्दी पेरो तन की ईख
नहीं मचाओ हल्ला चीख

नहीं हुआ कुछ भी कल्यान
मिला नहीं कोई वरदान
सब गाते हैं आँसू-गान
तड़प रहे हैं युग के प्रान

बड़ी कड़ू हैं अपनी बात
लेकिन यह है सच्ची बात
सहते सहते अब आघात
टूट गया है सब का गात

कहीं न देखा ऐसा राज
देख रहे हैं जैसा आज
ठग्गू पहने हैं सिरताज
घुग्घू हैं मंत्री महराज

11-9-1955

भैरव का भैंसा

[1]

कवि केदार करो मनमाना
तीरथ है कलियुग में थाना
थाने में रहता भगवाना
जग-जाहिर है नाम महाना

[2]

चोरी करो, चढ़ाओ पैसा
पूजो तुम भैरव का भैंसा
भैंसा है थाने का ऐसा
कोई देखा-सुना न जैसा

[3]

डाका मारो, कत्ल कराओ
काटो खेत, अनाज चुराओ
थाने में जाओ झुक जाओ
भैंसे को छूकर बच जाओ

[4]

मंत्री इसकी माया मानें
अफसर इस पर छाया तानें
खद्दरधारी बाप बखानें
डाकू चोर सभी सनमानें

[5]

ऊपर काला, भीतर काला
सरकारी शासन का पाला
काले हाथी सा मतवाला
करता है यह खूब घोटाला

[6]

इस भैंसे के खुर कटवाओ
बड़ी बढ़ी है पूँछ कटाओ
ऊँचे सींग मरोर झुकाओ
जल्दी बधिया इसे बनाओ

22–9–1955

धिक्कार है!

[1]

आँख मूँद जो राज चलावै
अंधरसट्ट जो काज चलावै
कहे-सुने पर बाज न आवै
सब का चूसै-लाज न लावै
ऐसे अँधरा को धिक्कार!
राम राम है बारम्बार!!

[2]

कानों में जो रुई लगावै
बानी से जो बान चलावै
नाक फुलावै, गाल बजावै
घर के भीतर खून बहावै
ऐसा सूरा को धिक्कार!
राम राम है सौ सौ बार!!

[3]

कातै सूत, मलाई खावै
पंखा खोले देह जुड़ावै
भौंहें तान ष हमैं कलपावै

सुरसा ऐसा मुँह फैलावै
ऐसे त्यागी को धिक्कार!
राम राम है लाखों बार!!

[4]

बेकारी दिन-रात बढ़ावै
पेटों पर जो गाज गिरावै
खेतों पर जो टैक्स लगावै
गीधों से जो गाँव खवावै
ऐसे हितुवा को धिक्कार!
राम राम है बारम्बार!!

[5]

हाथ जोड़ जो हाथ कटावै
पाँव पूजि जो पाँव कटावै
पेट पाल जो लाश उठावै
ड्योढ़ी मरघट एक बनावै
ऐसे बगुला को धिक्कार!
राम राम है सौ सौ बार!!

22-9-1955

और खेल लो और नाच लो

तुम जो माँ के चन्द्र-कुँवर हो
और बाप के हृदय-हार हो
किसी गाँव की
किसी गली के
किसी गेह के
होनहार हो
अभी धूल में
और धूप में
और खेल लो और खेल लो
गुल्ली-डंडा
छुवा-छुवौअल
आती-पाती
आँख-मिचौनी
ऊँचा-नीचा
क्योंकि तुम्हें कल
नहीं मिलेगा
समय खेल का
रोते-रोते
मर जाओगे
रामराज में!

तुम जो धरती की गोदी के
और हवा के गीतकार हो
हँसी-खुशी के नवजीवन के
नाट्यकार हो चित्रकार हो
अभी चाव से
प्रेम भाव से
और नाच लो और नाच लो
मोटी मोटी
ज्वार-बाजरे
और चने की
रोटी खा के
नमक-साग से
क्योंकि तुम्हें कल
नहीं मिलेगा
समय नाच का
नंग भूखे मर जाओगे
रामराज में!

1-10-1955

यह देखो कुदरत का खेल

[1]

गिरगिट बैठे सिंहासन पर,
गधे लगाते तेल!
बीन बजाते बाज महोदय,
मगर चलाते रेल!
यह देखो कुदरत का खेल!!

[2]

कल के त्यागी, अब के बगुले,
जुटे गोमती-तीर!
चाँदी-सोने के जूतों में,
पका रहे हैं खीर!
यह देखो खग की तकदीर!!

[3]

'जन-गन-मन-अधिनायक'-पैदल,
बड़े बजाते गाल!

टेढ़े-मेढ़े तिरछे चलते,
गिरे पड़े कंकाल!
यह देखो फर्जी की चाल!!

[4]

कहता है 'केदार' कड़ककर,
बजे ढमाढम ढोल!
अब तो गिरगिट थर थर काँपें
खुले गधों की पोल!
यह शासन हो गया मखोल!!

7-10-1955

बात करो केदार खरी

जय जय जय गोपाल हरी
बात करो केदार खरी
ठोंकी-पीटी धार-धरी
लपलप चमकै ज्यों बिजरी

नेतों की मति गयी हरी
दोनों आँखें हैं अँधरी
बातें करते हैं जहरी
जनता को कहते बकरी

शासन की नदिया गहरी
बहती है मद से अफरी
किन्तु नहीं भरती गगरी
सुख-सुविधा से एक घरी

अँगरेजों की वही दरी
आज बिछाये खून भरी
बैठे हैं ताने छतरी
मंत्रीगन परसे पतरी

18-10-1955

जनता का बल

मुझे प्राप्त है जनता का बल
वह बल मेरी कविता का बल
मैं उस बल से
शक्ति प्रबल से
एक नहीं–सौ साल जिऊँगा
काल कुटिल विष देगा तो भी
मैं उस विष को नहीं पिऊँगा!

मुझे प्राप्त है जनता का स्वर
वह स्वर मेरी कविता का स्वर
मैं उस स्वर से
काव्य–प्रखर से
युग–जीवन के सत्य लिखूँगा
राज्य अमित धन देगा तो भी
मैं उस धन से नहीं बिकूँगा।

22–10–1955

आज मरा फिर एक आदमी

[1]

आज मरा फिर एक आदमी!
राम राज का एक आदमी!!
बिना नाम का
बिना धाम का
बिना बाम का
बिना काम का
मुई खाल का
धँसे गाल का
फटे हाल का
बिना काल का
अंग उघारे
हाथ पसारे
बिना बिचारे
राह किनारे!

[2]

आज मरा फिर एक आदमी!
राम राज का एक आदमी!!

हवा न डोली
धरा न डोली
खगी न बोली
दुख की बोली
ठगी, ठठोली
काम किलोली
होती होली
है अनमोली
वही पुरानी
राम कहानी
पीकर पानी
कहतीं नानी :
आज मरा फिर एक आदमी!
राम राज का एक आदमी!!

23–10–1955

कल और आज

[1]

कल से आज अधिक कटु दिन है
कल रोटी थी
आज नहीं है
कल रोजी थी
आज नहीं है
रोटी-रोजी
जन-जीवन के लिए कठिन है

[2]

कल से आज अधिक कटु दिन है
कल छप्पर था
आज नहीं है
कल बिस्तर था
आज नहीं है
छप्पर-बिस्तर
जन-जीवन के लिए कठिन है

[3]

कल से आज अधिक कटु दिन है
कल तकिया थी
आज नहीं है
कल मचिया थी
आज नहीं है
तकिया-मचिया
जन-जीवन के लिए कठिन है

[4]

कल से आज अधिक कटु दिन है
कल किस्मत थी
आज नहीं है
कल हिम्मत थी
आज नहीं है
किस्मत-हिम्मत
जन-जीवन के लिए कठिन है

23-10-1955

गाओ साथी!

गाओ साथी! उन गीतों को
जो गाते हैं नंगे निर्धन,
पेट खलाये, रीढ़ झुकाये, जो गाते हैं टूटे निर्धन,
बोझा ढोते, राहें टोते, जो गाते हैं रोते निर्धन,
और डिगाते हैं शोषक का दिन-दिन दूना
जो सिंहासन!

गाओ साथी! उन गीतों को
जो गाते हैं तूफानी जन,
सीना खोले, मुट्ठी ताने, जो गाते हैं सेनानी जन,
विप्लव करते, राज पलटते, जो गाते हैं बलिदानी जन,
और ढहाते हैं दानव का दिन-दिन दूना
जो दु:सासन!

गाओ साथी! उन गीतों को
जो गाते हैं जोशीले घन,
अम्बुधि से उठ, अम्बर को भर, जो गाते हैं गर्वीले घन,
तांडव करते, अग्नि उगलते, जो गाते हैं युग का गर्जन,
और जगाते हैं जन-जन में दिन-दिन दूना
जो नव जीवन!

गाओ साथी! उन गीतों को
जो गाते हैं काल-प्रभंजन,
युग-ओठों से, जन-जीवन में जो लाते हैं ज्वाल चिरंतन,
ज्योतित करते, जागृत करते, जो आते हैं करते मंथन,
और झुलाते हैं भूतल को दिन-दिन दूना
जो कर कम्पन!

गाओ साथी! उन गीतों को
जो गाते हैं चट्टानी जन,
गाँव-नगर के, फैक्टरियों के जो गाते हैं कल-पुर्जे बन,
युग को गढ़ते, रचना रचते जो गाते हैं कर श्रम तर्पण,
और बढ़ाते हैं हाथों से दिन-दिन दूना
जो उत्पादन!

29-1-1956

कागज की नावें

कागज की नावें हैं तैरेंगी तैरेंगी,
लेकिन वह डूबेंगी डूबेंगी डूबेंगी॥

5–10–1957

राजमंच पर

राग-रंग की छविशाला के राजमंच पर
आमंत्रित भद्रों के सम्मुख भृगु-सा भास्वर
शासन के ऊपर बैठा बज्रासन मारे
वह भव-भारत की जन-वीणा बजा रहा है

सागर का मंथन मद का मंथन होता है
ऊँचे फन की लहरों के सिर झुक जाते हैं
कोलाहल जीवन करता है दिग्गज रोते
मस्तक फटते हैं गज-मुक्ता गिर पड़ते हैं

5-11-1958

तुम!

दोष तुम्हारा नहीं–हमारा है
जो हमने तुम्हें इंद्रासन दिया;
देश का शासन दिया;
तुम्हारे यश के प्रार्थी हुए हम;
तुम्हारी कृपा के शरणार्थी हुए हम;
और असमर्थ हैं हम
कि उतार दें तुम्हें
इंद्रासन से–देश के शासन से,
अब जब तुम व्यर्थ हो चुके हो–
अपना यश खो चुके हो!

16–11–1959

क्या हुआ ?

समाप्त हो गया
नीले आसमान का
खूनी व्याख्यान
दबोच लिया
अंधकार ने
आसमान को
अपनी कैद में
सो गये भद्दर नींद में
खून से रंगे श्रोता
सन्नाटे में
बोलने लगे
सियार हुआ-हुआ
दिन न होने की मनाते हुए दुआ
राम जाने क्या हुआ
न जान पायीं जगरानी बुआ

19-9-1965

भेड़ों का जुलूस

चीनी दूतावास के सामने
801 भेड़ों का जुलूस गया।
अपने कंठ से लटकाये हुए
इश्तहार
भारतीय भेड़ों ने वहाँ कहा :
''हमको खाओ–
दुनिया बचाओ।''

जुलूस पशुओं का था
दिल्ली में निकला था
वहाँ
राजधानी में जहाँ
मनुष्य के बड़े जूलूस खो जाते हैं
और
राजनीति की भूलभुलैया में
दिनदहाड़े
आदर्श लोप हो जाते हैं।

मगर यह जुलूस
राजधानी में न खो सका।
साधारण होते हुए भी
असाधारण हो गया यह जूलूस
और
महत्वपूर्ण हो गया इसका व्यंग।

न कहीं गोली चली–
न कहीं खून हुआ;
न कोई चीनी मरा–
न मारा गया;
फिर भी वही हुआ
इस व्यंग से भारतीय रोष प्रकट हुआ,
चीन के ऊपर सांस्कृतिक आक्रमण हुआ।
जो काम फौज से न हुआ
वह भेड़ों से हुआ।

खूब था यह जुलूस!
चीन के झूठ का यह जवाब
लजवाब था।
ऐसा जूलूस
न कभी निकला है–
न निकलेगा,
न इसका उदाहरण
इतिहास में कहीं मिलेगा।

मदांध माओ का सिर
झुके या न झुके
मगर इतिहास कहेगा :
भेड़ों ने माओ का सिर झुका दिया
और चीन को हरा दिया!

26–9–1965

नेता

तुम्हारे पाँव
देवताओं के पाँव हैं
जो जमीन पर नहीं पड़ते
हम वंदना करते हैं तुम्हारी
नेता!

29–12–1965

आपका चित्र

आपका चित्र
        जहाँ भी जिसने लगाया
आपका आशीष उसने पाया
जिंदगी का दौर
        उसने आपसे चलाया
न आपने उसे
न उसने आपको भुलाया
गरीब ने गरीब रहकर भी
        आपका गुन गाया
अमीर ने अमीरी का हौसला बढ़ाया
अवसर से लाभ
        राजनीति ने उठाया
शासन को
        आपके ही नाम ने जिलाया

30-1-1968
[गाँधी के चित्र को देखकर]

झूठ मरे तो कैसे

सच ने
जीभ नहीं पायी है
वह बोले तो कैसे
असली बात कहे तो कैसे

सच की बात
गवाही कहते
जीभ उलटते और पलटते
सच कहने में असफल रहते
        सच साबित हो कैसे
        दिन में दिन हो कैसे

न्यायी बैठे
        जीभ पकड़ते
जब वादी-प्रतिवादी लड़ते
        सच के पाँव उखड़ते
        झूठे के जब झंडे गड़ते
सच जीते तो कैसे
न्याय मिले तो कैसे

असली का नकली हो जाता
नकली का असली हो जाता
न्याय नहीं हंसा कर पाता
नीर-क्षीर विलगे तो कैसे
सच की साख जमे तो कैसे

कागज का पेटा भर जाता
पेटे में पड़ सच मर जाता
झूठे को डिगरी मिल जाती
जीते की बाछें खिल जातीं
झूठ मरे तो कैसे
कष्ट हरे तो कैसे

20-4-1968

न्याय-अन्याय

पनाह पाने गया
एक आदमी
दूसरे आदमी के पास
जुल्म का मारा
कराहता, बदहवास

जिसे देना था पनाह
वही कर बैठा गुनाह
जुल्म के मारे को
मारकर
अपने कानून के
अंधे जुनून से
वारकर

जुल्म से जुल्म पर
जा रहा है हिन्दुस्तान
कानून हो रहा है

इंसान के खिलाफ

हथियार

न कोई बचत है

न कोई उपाय

न्याय भी हो गया है अन्याय

23-4-1968

सत्य और झूठ

सिर कटी लाश
सिर लगे लोग
कारगर नहीं हुए
न्याय के समक्ष
कत्ल के मुकदमे में

यांत्रिक परीक्षण में
कुचल गये दोनों–
लाश और लोग

सच का अस्तित्व नहीं
सिद्ध हुआ,
दिन का अपराध

नहीं उघड़ा,
संशय से न्याय
नहीं उबरा,
बंदी–जन छूट गये
और गये हँसते

रोते रहे राज-हंस
रोती रही राज की व्यवस्था
सत्य हुआ मुरदा
न्याय हुआ मुरदा
झूठ हुआ फूलदा
फलदा

27-4-1968

स्थिति

बिगड़े हैं लोग
और बिगड़ा है आचरण
रोके नहीं रुकता अपराधों का प्रजनन

29–4–1968

वह

चेहरा लगाये है
        गुरिल्ला का
सुबह आने के लिए
दिन का दायित्व
        निभाने के लिए
धूप जो मर गयी है
        फिर भी है
उसको जिलाने के लिए

30-4-1968

उत्तरी वियतनाम

समय फाड़कर चराचर
समय के अन्दर
दहाड़ता लड़ रहा है जीवंत
उत्तरी वियतनाम
अपने देश की लड़ाई
जन-बच्चे से

दखलन्दाज अमरीकियों को
अच्छा मिल रहा है सबक
उस देश में गरदन फँसाकर
अपने देश की
गरदन कटाने में

डालर ने सोचा था :
हो-ची-मिह्न भुनगा है;
उसका देश केचुआ है;
उसके लोग मुरदा हैं;
जाहिल आबादी है;

चुटकी से मसल देगा भुनगे को
एड़ी से कुचल देगा केचुए को
जल्दी से जीत लेगा मुरदों को
जाहिल आबादी को पीट लेगा

लेकिन
उस भुनगे ने
डालर को मसल दिया,
केचुए ने
डालर को कुचल दिया,
मुरदों ने
डालर को पीस दिया,
जाहिल आबादी ने
डालर का खून किया

डालर की फौज फटी काई-सी
डालर के वायुयान
टूट गये कुल्हड़-से
फूट गये बुल्ले-से
अब की लड़ाई में

ताकतवर अमरीका
इतना कमजोर हुआ
कई गुना
कई गुना
अब की लड़ाई में

जितना कमजोर नहीं
दुनिया में और हुआ

चींटी ने
हाथी को जेर किया
हाड़ों के पर्वत को
मिट्ट का ढेर किया

जब से चली
और चलती चली जा रही है लड़ाई
उत्तरी वियतनाम
होता चला जा रहा है
दिन-पर-दिन
मजबूत
न गलने वाला फौलाद,
न रुकने वाला सैलाब,
जुझारू
मर्द
औरत
और बच्चों का
दनादन चलती बंदूकों का-
मौत को पीटती
परास्त करती
जिंदगी का
इतिहास लिखा जा रहा है
उत्तरी वियतनाम की

एक-एक इंच जमीन पर
एक-एक आदमी का
शहीद हुए लोगों का
देश की सुरक्षा में।

सबसे अधिक पड़ा है
प्रभाव इस लड़ाई का
दुनिया के लोगों पर
भाले से भुके हुए लोगों पर
पैरों पर पड़े हुए लोगों पर
और वे तन गये
जवाँ मर्द हो गये
मौत के मुँह में अब

10-5-1968

न्याय की चिड़िया

न्याय में दिखती है
निगाह की कमी
थाह और अथाह के अवगाह की कमी

सतह पर उड़ती है
न्याय की चिड़िया
नहीं देख पाती है
सीपियों में बंद मोती
न पकड़ पाती है मछलियाँ

मुरदा हैं
मुरदे-से न्याय की उँगलियाँ
कागज पर टोह नहीं पाती हैं गलियाँ
खोल नहीं पाती हैं
बंद बंद कलियाँ

दीन हो गया है संकल्प से रहित न्याय
संशय की संगत में
बेसिर पैर की देते हुए राय

भेंड़ हो गयी है गाय
पान हो गयी है चाय
न्याय ने लगा ली है
मुँह में अन्याय की जीभ
धुआँ छोड़ती चलती है
चलने में जैसे जीप
उसका साथ देता नहीं
ड्राइवर विवेक
उलट-पलट देती है
सच का व्यतिरेक

25-5-1968

भविष्य

बंदूक मारती
चल रही है हवा

गाँव घर
शहर
जंगल
मैदान से

लड़ती-झगड़ती
पेड़ों को पटकती
खोदती जड़ें

उखाड़ती पछाड़ती पहाड़

नींद की नदियों को
रौंदती
उछालती
धूप

और धरती को

आसमान
आगी को
साँस से पछोरती
झोरती
देश को झकोरती
हूहाकर चल रही हवा

डरा भग रहा है
डरपोक आदमी
भयंकर हवा के आतंक से
अतीत की ओर, अंधकार की ओर
ध्वंस से खुल रहे
दिशाओं के द्वार की ओर नहीं
जहाँ निर्भीक पुरुषार्थियों के
स्वागत में
दमदमाता भविष्य
इंतजार में खड़ा है
सतेज उपलब्धियों का दस्ता

30-5-1968

नेता

नेता निगाह का कच्चा है
नासमझ देश का बच्चा है

27 जनवरी, 1969

हम

आपने खाये हमारे गट्टे हैं
हमारे खाये फल बहुत खट्टे हैं

27-1-1969

सिपाही

सर्र से निकल गयी
चोर की मोटर
सिपाही देखता रह गया
इधर से उधर

27-1-1969

पैसा

पैसा
दिमाग
में वैसे
सुअर
जैसे
हरे खेत
में

बाप
अब बाप नहीं
पैसा
अब
बाप
है

पैसे
की सुबह

और
पैसे
की शाम
है

दुपहर
की
भाग–
दौड़
पैसा है

पैसे
के
साथ पड़ी
रात है

30–1–1969

विकास

विकास इस दिशा में हुआ है;
अब बहुत आदमी
बे-सिर पैर का हुआ है

पीठ के नीचे धूल पड़ी है
पेट पर आसमान खड़ा है
हाथ के हल गिर पड़े हैं

31 जनवरी, 1969

अखबार

कल का अखबार हूँ मैं
आज का नहीं

इतिहास के पेट में पड़ा हूँ मैं
आज के बोध से दूर
भविष्य के बोध से बहुत दूर

छप चुका हूँ मैं
पढ़ चुके हैं लोग
आज का अखबार
दूसरा अखबार है

23-3-1970

सिपाही हूँ

सिर नहीं–
गुलाब तोड़े हैं मैंने
क्योंकि मैं
सिपाही हूँ–
बाग में बगावत का खतरा है
आग से बचाना है
भीड़ को मिटाना है

4–4–1970

आग

आग को
आदमी
बनाये है पालतू
अपने लिए

आग अब करती है
आदमी को झुके-झुके
सलाम

आग अब आग
नहीं–
गुलाम

23–10–1970

सच-झूठ

क्या यह सच है
        कि सच नहीं है

झूठ जैसे
        झूठ नहीं है

कचेहरी में
        धूप से भरी दुपहरी में?

23-10-1970

वे

हम गा रहे हैं
उनकी मौत का गाना
जिन्हें आता है अब
इंसान को हैवान बनाना

खुद अपने लिए आरामगाह
और दूसरों के लिए
जगह-ब-जगह
कत्लगाह बनाना

12-12-1970

बाँगलादेश के प्रति

आयी खबर नगर में मेरे
तोड़-ताड़कर जालिम प्रतिबन्धों के घेरे-

मैंने देखा
खुली आँख से;
लोगों ने हैरत से देखा;
गली-गली हर घर में पहुँची
खबर नगर में मेरे

''तेरे प्राणों पर बन आई;
सिर पर
जंगल के शासन का धुआँ-धुआँ है;
माथे पर
सूरज मातम से जूझ रहा है;
अनबुझ आँखों के अंगारे
पलक खोलने के निश्चय से तड़प रहे हैं;
सीने पर
जख्मों की माला झूल रही है

कमर
समर के ओज ओप से कसी हुयी है;
दोनों पाँव
प्रलय के जल से प्रवहमान हैं;
पद्मा की तलवार
वार के लिए हाथ में लपक रही है।''

तेरी यह तस्वीर देखकर,
तुझे रक्त से रंगा देखकर,
जी भर आया,
तेरे दु:ख में डूब गया मैं
और नगर भी
तेरी मर्म व्यथा से व्याकुल द्रवित हो गया।

जितना देखा, ज्यादा देखा,
उतना तुझको चिन्तित देखा
चिन्ता में भी लेकिन कम-कम विचलित देखा,
कम-कम विह्वल आकुल देखा।

मैं सम्हला पर सम्हल न पाया;
सोया तर्क,
विवेक खो गया;
चेतनता में महाशून्य परिव्याप्त हो गया;
और नगर के
चट्टानी सीनों में लाखों बाण गड़ गये-

तेरे जख्मों के समान ही
जगह-जगह पर दह-दह दहके घाव बन गये

कुछ दिन गये निशायें बीतीं-
और मिली फिर विषम सूचना-
''दुर्दम दानव मथे डालता है जन-सागर,
अमृत का घट पाने के हित;
लेकिन तेरी मुक्तिवाहिनी लहरें उठकर-
लपट-झपटकर-
झूम-झूमकर दानव दल को पटक रही हैं

जन-बच्चों का दल-बल सागर-
उद्वेलित आन्दोलित होकर-
आर-पार विस्तारित होकर,
क्रोधाचारित उबल पड़ा है-
दण्ड-दमन के दर्प दैत्य को भेद रहा है
अहरह
अहरह
अस्थिर
और अधीर अनिद्रित।

वे किसान मजदूर कुली वे
वे निरस्व वे निरावलम्बित,
वे शरीर से क्षीण वृत्ति से हीन,
सभी वे ग्रंथकार लेखक, कवि, कोविद,
विद्याव्यसनी, शिक्षाशास्त्री, कलाकार वे,

दफ्तर-दफ्तर के सब बाबू,
न्यायालय के न्याय विज्ञजन,
एकजूट होकर सब उमड़े
जन-बल सागर के उभार का वक्ष बन गए।

शोभा, संस्कृति, कला, सभ्यता,
चिन्तन, दर्शन, दिशा, देश की,
बँगला भाषा,
रंग मुखी चित्रों की छवियाँ,
रंगमंच के नटी और नट,
गायन-वादन के प्रवीण जन,
वे सब-के-सब
एक दूसरे के संरक्षक तेरे तन के प्राण बन गए-
दानव दल के घातक,
पालक कर्म भूमि के,
उद्यत कर्मठ हाथ बन गये।''

हर्ष हिलोर हवा में दौड़ी :
और नगर के हर मकान से आशा विहँसी
केन नदी के पानी में चेतनता चमकी;
काली मिट्टी
फिर मुसकायी काले बादल की बिजुली से
सुख की साँस चली फिर सुख से;
दर्द चूर हो गया हर्ष से
आसमान का नील कमल भी जागा फूला।

मैं भी दुख की शिला तोड़कर बाहर निकला,
मैंने फिर से आँखें खोलीं,
नयी नजर से दुनिया देखी;
मेरी काया की अमरायी में वसन्त की कोयल कुहुकी;
मेरे हाथों में विप्लव का बल लहराया;
मेरा सीना
इतना उभरा
इतना उभरा
मुक्ति फौज के उभरे सीने तक जा पहुँचा,
मिला, और फिर कवच बन गया उसका,
बज्रघात भी जिसे तोड़ने में अक्षम हो।

लगा कि जैसे
एकाकी बाती का दीपक
लाखों लौ का सजग सचेतन दिया बन गया।

लगा कि जैसे म्लान नाल हो गयी शलाका समय शौर्य की,
और शलाका पर फौलादी
विजयमुखी पंखुरियों वाला कमल खिल उठा।

लगा कि जैसे
अष्टभुजी दुर्गा में व्यापीं
रमारम्य
वाणी–पटरानी
महाकाल की तीन मूर्तियाँ–तीन देवियाँ एक हो गयीं

लगा कि जैसे
नाग नाथने लगा कन्हैया फन पर बैठा।

लगा कि जैसे
अंधधर्म के कपट मुनि का शीश कट गया।
लगा कि जैसे
वर वसंत ने वाना पहना समय शूर का।

लगा कि जैसे
जय का ओझल क्षितिज खुल गया–
निकट आ गया।

लगा कि जैसे
पाँचों तत्व अभिन्न भाव से–शुद्ध भाव से
समय अशंकित लड़ने आये।

लगा कि जैसे
विजय वरेगी निश्चय तुझको,
कल–
आगामी कल में निश्चय।

लेकिन हर्ष विषाद बन गया
यह संवाद अशिव जब आया :

''तोप-कोप की नगर-नगर में गरज रही है–
गरज-गरज कर बरस रही है
आग और आतंक बवंडर।

आशंका के भीम भयावह जबड़े उघड़े
दाब चुके हैं तुझे दाढ़ के नीचे कचकच
तहस-नहस होती जाती है तेरी काया, तेरी संज्ञा
जन-जीवन हो रहा दिनों दिन मर्घट जैसा।

मुक्तिवाहिनी ठहर न पायी किसी नगर में
पीछे हटने की उसने रणनीति बनायी।

मारे जाने लगे बुद्धिजीवी समूह में-एकाकी भी
जहाँ मिला जो सुधी, विवेकी
उसे वहीं पर
कातिल फौजी अधिकारी ने कत्ल कर दिया।

विद्यालय, बूचड़खानों में बदल गए हैं।

हत्याओं के दहन कुंड में
नगर निकेतन होम गए हैं

जिसने भी चूँ चपड़ मचायी उसकी गर्दन गयी उतारी
जिसने भी ललकार लगायी-आँख दिखायी
उकी हस्ती गयी मिटायी

अस्मत लूटी गई सड़क पर।

सुन्दरता पर डाके डाले गये पिशाची
सूरजमुखियों के शरीर को भस्म बनाया।

माँ की ममतामय आँखों में
दैत्य जनों ने भाले भोंके
और दूधिया पयोधरों पर
खूँ-रेजों ने चाकू गाड़े।

मत्तमदान्ध गजों के दल ने
सन्तानों की फसलें रौंदी।

पुस्तक भवनों पर विनाश के छापे मारे गए असंगत।

कवि रवीन्द्र का सदन धूल में गया मिलाया।

प्रजातन्त्र की सहज जिन्दगी को दरोरकर
भूँजा गया अलख जगाकर।

नगर-नगर के मधुकोषों को काट-काटकर,
हत्यारों ने शहद चुराया-
फूल-फूल से लावा निकला।''

यह घटनाक्रम
असहनीय हो गया मुझे भी और सभी को;
मेरा नगर हताश हो गया।

लगा कि जैसे
धरती अपनी परिधि छोड़कर चली जा रही-
रोक नहीं पाता है कोई।

लगा कि जैसे
पाँचों तत्व विराट प्रकृति के विलग हो गए;
अब न वनस्पति कहीं उगेगी;
कहीं न कोई जीवन होगा।

लगा कि जैसे
समय काँच की तरह टूटकर चूर हो गया,
अब जोड़े से नहीं जुड़ेंगे उसके टुकड़े।

अता-पता अब प्रकृति पुरुष का नहीं रह गया।

नियमहीनता-
असम्बद्धता महाव्याधि-सी पसर गयी है।

लगा कि जैसे
अब न सभ्यता अथवा संस्कृति कहीं शेष है,
केवल दुर्मति है, दुर्गति है;
खंडित करती-चूर्ण बनाती
अराजकता का ताण्डव है।

ऐसे-ऐसे भावबोध से तत्क्षण मेरा धीरज छूटा
झकझोरा मुझको झंझा ने;
मैं भीतर बाहर से सिहरा।

तुझे मौत के मुँह में जाते हुए देखकर,
मूर्छित मेरी देह हो गयी
लेकिन मेरा विज्ञानी मन हुआ न मूर्छित एक निमिष को,

उसे होश में मेरा मन अविकल ले आया;
मेरी देह विदेह दिशा से वापस आयी।

मैंने देखा
मेरी सूझ-समझ सब बदली।

मैंने देखा
फिर-फिर देखा
भीतर-बाहर की आँखों से
घट-घट देखा
पर विषाद को कहीं न देखा-
अँतरे-कोने कहीं न देखा।

देखा मैंने फिर से तुझको,
आयी खबरों में फिर देखा,
सम्वादों में फिर-फिर देखा,
वक्तव्यों में धँसकर देखा,
पैठ-पैठकर टिप्पणियों में गहरे देखा,
तह के तह सब
तरह-तरह के परत खोलकर
आँख गड़ाये तुझको देखा,
सचमुच देखा,
और देखते में यह देखा
तूने छापामार लड़ाई शुरू किया है
युवक युवतियाँ,
गाँव-गाँव की धरती के जन,

तेरे साथ सभी लड़ते हैं
तेरी छापामार लड़ाई,
और तुझे जीवित रखते हैं
दानव दल के नरमुंडों की भेंट चढ़ाकर।

मैंने समझा
जनसत्ता की यही लड़ाई
लड़कर तुझको मुक्ति मिलेगी–
चाहे जितनी चले लड़ाई–
चाहे बरसों-बरसों चालू रहे लड़ाई–
चाहे कोई साथ न आये–
चाहे कोई मदद न लाये।

हो-ची-मिन्ह भी याद आ गये इस अवसर पर
और लड़ाई उनके वाले वियतनाम की याद आ गयी।

मैंने समझा
वही लड़ाई तुझको भी अब लड़नी होगी
उसी तरह से तुझको भी अब जुटना होगा;
उसी तरह तेरी जनता को उठना होगा;
उसी तरह अपनी सत्ता को गढ़ना होगा;
उसी तरह प्रण रखना होगा;
जनता का हित-जनता की जय
उसी तरह से करना होगा।

अब है मुझको पूरी आशा
तू अपना उद्धार करेगा–
वैरी का संहार करेगा–
नहीं कभी घुटने टेकेगा–
नहीं किसी के हाथ बिकेगा–
मुक्त राष्ट्र होकर चमकेगा–
दिन का सूरज
और रात का चाँद बनेगा।
नयी जवानी फतह करेगा।

6/8–3–1971

वह

वह
जाकर
चली आती है
रुपये लेकर
बलात्कार भोगकर
दूसरों के साथ,
ब्याह गये
बुद्धू के साथ
समाज की आँखों में
जीने के लिए
कैद
और कुंठित।

20-6-1972

अहिंसा

मारा गया
लूमर लठैत
पुलिस की गोली से

किया था उसने कतल
उसे मिली मौत
किया था कतल पुलिस ने
उसे मिला इनाम

प्रवचन अहिंसा का
हो गया नाकाम।

21-6-1972

अफसर

ये बड़कवे,
पुराने, गब्बर,
पेटू अफसर
चाल-फेर से
चला रहे हैं
राजतंत्र का
चक्कर-मक्कर
अब तक-अब तक,
इनसे पककर
टूट रही है
जनता थककर,
इन्हें हटा पाना है
मुश्किल,
इनके आगे
एक नहीं चल पाती
अक्किल।

25-7-1976

तुम-हम

सत्ताइस साल में तुम
न तुम रह गये तुम
न हम रह गये हम
तुम हो गये खूँखार
हम हो गये बीमार
अभाव-ग्रस्त लाचार

1-8-1976

हम समझे

हमने सराहा
जब तुमने
हमें
पहले-पहल
भविष्य का
नक्शा
देश के दर्पण में
खुशहाल दिखाया,
और हम खुश हुए
हमने तुम्हें
        सिर पर चढ़ाया
और कविता में
        तुम्हें गाया।
लेकिन
जब-जब तुमने
अपना
        चक्कर
मक्कर चलाया
        और पूँजी के पैंतरे से
हमें भरमाया,
        स्याह को सफेद

और सफेद को स्याह बताया,
गलत को सही
और सही को गलत समझाया
तब हम समझे
तुम आदमी नहीं
उल्लू हो,
न तुम भविष्य को उज्ज्वल कर सकते हो
न आज को सुन्दर
कर सकते हो

2-8-1976

संसद और संविधान

संसद
हो गयी सर्वोपरि
संविधान हो गया संशोधित
धर्म निरपेक्ष हो गया लोकतंत्र
समाजवादी हो गया
भारत-भाग्य-विधाता,
आम आदमी हो गये अनुशासित
सिर पर लिये
संसद और संविधान
एक ही चाल और चरित्र से
अनुबंधित जीने के लिए
लघुत्तम इकाई से महत्तम इकाई होने के लिए
अन्ततोगत्वा
देश के लिए होम में हविष्य हो गये।

3-8-1976

साँप और शैतान

हम बाण मारते हैं
न साँप मरता है–
न शैतान।
हम हो गये
परेशान,
हमें मारे डालते हैं
साँप
और शैतान।

13–8–1976

एकता

हो गया फिर आज
हजारों वर्ष पूर्व की घटना का
पारम्परिक निर्वाह
'निमनी' पार टीले पर यथास्थान बनाये गये
पहले की भाँति-कागज और खपच्चियों के रावण का
दाह संस्कार।

राम का रूप बनाये एक बालक के द्वारा
बाँस की कमची से बने धनुष से चलाये गये
सरकंडे के बाण से होते-होते शाम।
धर्मनिरपेक्ष देश की धर्मान्ध जनता
देखती रही बधोत्सव
और गद्‌गद् होती रही भारी भीड़,
समाप्त हो गया एक वार्षिक सांस्कृतिक तमाशा
भ्रमित जन-मानस की तुष्टि के लिए
आयोजित किया गया साभिप्राय।
ग्लानि से भरा मैं
अभी तक नहीं देख पा रहा अपने नगर की जनता का उद्धार,

न जाने कब किस तरह विध्वंश होगा यह दुराचार
नकली राम-रावण के युद्ध का
घृणास्पद संस्कार।

देर है अभी
शताब्दियों की
जब उत्तर और दक्षिण का
हो सकेगा भावनात्मक मेल-मिलाप
देश को करना पड़ेगा इसके लिए
अनवरत सतत संघर्ष और प्रयास
द्वेष से नहीं प्रेम से
जीतना होगा दक्षिण का मानवीय हृदय
तभी फल-फूल सकेगा
अखंड भावनात्मक एकता का संविधान
और
भारत की भूमि का हो सकेगा सर्वांगीण कल्याण।

3-10-1976

ये साधक

ठाट-बाट के सुविधा-भोगी
ये साधक-आराधक धन के
निहित स्वार्थ में लीन निरंतर
बने हुए हैं बाधक जन के
केन्द्र-बिन्दु पर बैठे-ठहरे
चक्र चलाते हैं शोषण के

6-10-1976

आज

काल पड़ा है बँधा
ताल के श्याम सलिल में
ताब नहीं रह गयी
देश के अनल-अनिल में

20-10-1976

गूँज

आज सामंती पुरानी हो गयी
मौत के मुँह की कहानी हो गयी

जो भलाई थी बुराई हो गयी
जो कमाई थी चुराई हो गयी

प्यार वाली आँख कानी हो गयी
मात खायी जिंदगानी हो गयी

आज रानी नौकरानी हो गयी

15–11–1976

पहली बार

अब
इस बार
पहली बार
सिंह और पंडित की
वर्ण-माला तोड़ी गयी,
तपे हुये लोहे को
चुना गया
लोकसभा का चुनाव
लड़ने को।

चक्कर
मक्कारों का नहीं चला
शोषक श्रीमंतों का
दाँव भी नहीं चला,
ऊँचे अब
नीचे हुए
पानी बिना सूखे हुए

17-2-1977

अन्याय की जीत

न्याय
से लड़ा अन्याय
एक से दूसरी
दूसरी से तीसरी
कचेहरी में,
अन्त
में जीता अन्याय
जो था जबरजंग
चौपट हो गया न्याय।

25–2–1977

बीच में

चलते-चलते भी
न चलकर थक गया दिमाग,
पाँव की यात्रा पर गये पाँव न थके
विवेक हो गया बैठ गया दूध
गन्तव्य के पहले ही,
बीच में एक जगह
झाड़-झंखाड़ में फँस गयी राजनीति
फँसी चिड़िया उड़ नहीं पाती।

28-3-1977

इन्तजार

निरंकुश

भागता–दौड़ता–रौंदता

यथार्थ का मदांध हाथी,

सरकसी घेराव से बाहर निकला,

अधिकाधिक

उत्पात कर रहा है नगर में।

न पकड़ में आता है

न गोली से मरता है

न जंजीर से बँधता है

अनुशासित गरिमा को

चूर–चूर करता है

जनता बिलबिलाती है

नेता की समझ में नहीं आता क्या करें।

बेकार लगती है

शिकायत की

महफिल में शिकायत

'जीरो आवर' का इन्तजार

बस इन्तजार है।

30-3-1977

केदारनाथ अग्रवाल
का
रचना-संसार